मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 19 ● वर्ष 2 ● अंक 12 ● फ़रवरी 2013 ● पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

2014 के आम लोकसभा चुनावों के लिए शासक वर्गों के तमाम दलालों की साज़िशें

अपने असमाधेय राजनीतिक और आर्थिक संकट से निपटने के लिए

शासक वर्ग द्वारा साम्प्रदायिक उन्माद, जातिगत वैमनस्य और क्षेत्रीय कट्टरवाद भड़काकर मज़दूर वर्ग को तोड़ने की तैयारी

● सम्पादकीय अग्रलेख

2014 के लोकसभा चुनावों की उलटी गिनती शुरू हो चुकी है। सारे चुनावी मदारी अपने बुनियादी एजेण्डे पर वापस लौट रहे हैं। भारतीय जनता पार्टी, कांग्रेस-नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार की बढ़ती अलोकप्रियता और संकट का लाभ उठाना चाहती है लेकिन इन फासीवादियों का अपना खेमा भी भयंकर बिखराव और मारकाट का शिकार है। न तो भाजपा के पास कोई ऐसा नेतृत्व है जो कि इन फासीवादियों की एकजुटता को क़ायम रख सके और न ही वह कांग्रेस की असफलताओं का लाभ उठा पा रही है। भ्रष्टाचार के मसले पर संघ परिवार मौजूदा सरकार को कोने में धकेलना चाहता था लेकिन स्वयं उसके अनुषंगी चुनावी संगठन भाजपा के नेता-मन्त्रियों ने पिछले डेढ़ दशक में केन्द्र की सत्ता में रहने के दौरान और कई राज्यों में सत्ता में रहने के बाद भ्रष्टाचार के ऐसे रिकार्ड बनाये हैं कि भ्रष्टाचार की इस रेस में कौन किससे आगे है, इसका फैसला करने के लिए सरकार को एक आयोग बैठाना पड़ सकता है! भ्रष्टाचार-विरोधी नौटंकी (जिसकी योजना बनाने में संघ परिवार के तोप चिन्तकों ने काफ़ी मगजमारी की थी) के दो-तीन वर्षों में ही भाजपा को समझ में आ चुका है कि भ्रष्टाचार के नाम पर वह कांग्रेस के शरीर से जितने कपड़े नोच सकती है, कांग्रेस भी इस मसले पर उसके शरीर से उतने ही कपड़े नोच सकती है! और एक-दूसरे को नंगा करने के पिछले दो-तीन वर्षों के खेल में अब इन दोनों पूँजीवादी चुनावी पार्टियों ने वैसे भी एक-दूसरे के शरीर पर सूत का एक धागा भी नहीं छोड़ा है। पूँजीवादी मीडिया, पूँजीवादी पार्टियों और अण्णा हज़ारे और केजरीवाल जैसे जोकरों के ज़रिये भ्रष्टाचार का जो हौव्वा खड़ा किया गया था उसकी हवा निकल चुकी है और आम जनता भी समझ चुकी है कि यह मसला तो सिर्फ़ जनता का ध्यान इस व्यवस्था की अन्दरूनी और असमाधेय सड़न-गलन से ध्यान हटाने के लिए उछाला गया था। इस बीच इस पूरी नौटंकी के लिए जिस जमूरे केजरीवाल को खड़ा किया गया था उसकी सत्ता की अपनी महत्वाकांक्षाएँ भी उसके सिर चढ़कर बोल रही हैं। वह भ्रष्टाचार के मुद्दे पर अभी भी उछल-कूद मचा रहा है। अब चूँकि दिखने में केजरीवाल और उसके चेले-चपाटी कहीं से भी 'आम आदमी' नहीं लगते, इसलिए उसे अपनी टोपी पर यह लिखकर बताना पड़ता है कि 'वह आम आदमी है!' हम जानते हैं कि इस देश के आम मेहनतकश नागरिक को अपने 'आम' होने और दिखने को साबित करने के लिए कोई टोपी लगाने की ज़रूरत नहीं है! लुब्बेलुबाब यह कि केजरीवाल जैसे लोगों को छोड़ दिया जाये (जिसकी आने वाले लोकसभा चुनावों में अच्छी गत बनने वाली है!), तो पूँजीपतियों के तलवे चाटने वाली सारी राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पार्टियाँ समझ चुकी हैं कि भ्रष्टाचार के मुद्दे की डग्गामार गाड़ी जो उन्होंने चलायी थी, उसके टंकी में किरासन ख़त्म हो गया है। देश की पूँजीवादी राजनीति का भयंकर संकट जनता के बीच पूरी पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति बची-खुची आस्था को भी ख़त्म कर रहा है। और ऊपर से जिस असमाधेय संकट की शिकार समूची पूँजीवादी व्यवस्था पिछले कुछ वर्षों से है, उसका असर अब भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी पूरे ज़ोर-शोर से दिखने लगा है। इस संकट के भँवर से निकलने का कोई रास्ता पूँजीपति वर्ग और उसके राजनीतिक नुमाइन्दों के पास नहीं है। भूमण्डलीकरण की नवउदारवादी नीतियों को वे पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर छोड़ नहीं सकते, और मुनाफ़े की गिरती दर ने पूँजीपति वर्ग के लिए कल्याणकारी नीतियों को लागू कर पाना और भी असम्भव बना दिया है। ऐसे में, सरकार में बैठे लोग न तो बेरोज़गारी पर काबू कर सकते हैं और न ही महँगाई और भ्रष्टाचार पर। इन प्रकोपों का जनता पर जो कहर बरपा हो रहा है, उसके कारण जनता के भीतर रोष और भी भयंकर तरीक़े से पनप रहा है। दुनिया के कई देशों में जनता के जो विद्रोह पिछले कुछ वर्षों में हुए हैं और अभी भी जारी हैं, उनसे उन

(पेज 6 पर जारी)

मारुति मज़दूरों के आन्दोलन को जीत के लिए अपनी ताक़त पर भरोसा करना ही होगा!

● अभिनव

आज मारुति सुज़ुकी का हर आन्दोलनरत मज़दूर यह जानता है कि हरियाणा सरकार का हरेक मन्त्री, हरेक नेता और विधायक मारुति सुज़ुकी कम्पनी के दलाल के तौर पर काम कर रहा है। पिछले कुछ महीनों से मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व में मज़दूर बिना थके एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े का चक्कर लगाते रहे हैं। कभी उद्योग मन्त्री रणदीप सुरजेवाला, तो कभी श्रम मन्त्री शिवचरण वर्मा तो कभी खेल मन्त्री और कभी गुड़गांव के डिप्टी कमिश्नर के यहाँ माँगों की सुनवाई के लिए मारुति मज़दूर लगातार जाते रहे। लेकिन क्या हासिल हुआ? कहना चाहिए कि इन नेताओं और नौकरशाहों ने कोई ढंग का आश्वासन तक नहीं दिया। कुछ ने तो साफ़ कह दिया कि हरियाणा के लड़के ज़्यादा टेढ़े हैं, और अब उन्हें हरियाणा में उद्योगों में भर्ती नहीं किया जायेगा! कुछ ने यह कहा कि मुख्यमन्त्री भूपिन्दर हूडा बहुत नाराज़ हो गये हैं और अब तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता। अभी 27 जनवरी को रोहतक में हुए जुटान के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि हूडा भी हमारी माँगों को लेकर सहमत नहीं है। पहले उसने यूनियन के साथियों को 13 फ़रवरी को बात करने का वक़्त दिया। अब उसे आगे खिसकाकर 21 फ़रवरी कर दिया गया है। जाहिर है कि हरियाणा सरकार यह समझ रही है कि मज़दूरों को इन्तज़ार करवा-करवाकर थकाया जा सकता है। हरियाणा सरकार को यह लगता है कि अगर गुड़गांव, रोहतक आदि में मारुति सुज़ुकी के मज़दूर इंसाफ़ के लिए कोई प्रदर्शन या धरना शुरू करते हैं, तो उन्हें वहाँ से उजाड़ दिया जायेगा, और जब तक वे एक नेता के दरवाज़े से दूसरे नेता के दरवाज़े तक "लोकतान्त्रिक तरीक़े से" (जैसा कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के नेतागण मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन को सलाह देते हैं) चक्कर लगाते रहते हैं, तब तक कोई नुकसान नहीं हैं। हूडा भी जानता है कि एक दिन इस प्रक्रिया में मज़दूर थक जायेंगे।

मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन का संघर्ष अब जिस मंज़िल पर खड़ा है, उसमें या तो इसे फैसलाकुन तरीक़े से आगे जाना होगा, अन्यथा आन्दोलन में सक्रिय आबादी थकान का शिकार होती जायेगी। पिछले चार महीने से, यानी नवम्बर से मज़दूर हर माह दो से तीन बार कभी यहाँ तो कभी वहाँ एकदिनी प्रदर्शन कर रहे हैं। जाहिर है कि इन प्रदर्शनों से हमें अभी तक कुछ भी हासिल नहीं हो पाया है, और आगे भी ऐसे प्रदर्शनों से अब शायद ही कुछ हासिल हो। ऐसे प्रदर्शनों से कुछ हासिल होना तो दूर, एम.एस.डब्ल्यू.यू. के एक प्रमुख नेता ईमान ख़ान को ऐसे ही एक प्रदर्शन के पहले गुड़गांव के एक केन्द्रीय ट्रेड यूनियन से जुड़ी यूनियन के दफ़्तर से हरियाणा पुलिस ने धोखा देकर गिरफ़्तार कर लिया और उन पर भी वही धाराएँ लगा दीं, जो कि 18 जुलाई की घटना के बाद

(पेज 10 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों की रैली और उनके समर्थन में देशव्यापी प्रदर्शन। 10
महाकुम्भ में सन्तों की घृणित मायालीला, विहिप की धर्मसंसद में साम्प्रदायिक प्रेत जगाने का टोटका 13
नौसेना विद्रोह (18-23 फ़रवरी 1946): एक ज्वलन्त इतिहास 14
राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त: खोखले सिद्धान्त नंगी सच्चाइयाँ 16

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूर वर्ग का एक हिस्सा, जिसे शर्म आती है ख़ुद को मज़दूर कहने में!

समूचे भारत में व्याप्त कूपमण्डूकता व पिछड़ी संस्कृति की वजह से, जिस घर में बाप-दादों व पुरखों ने कभी स्कूल का मुँह तक न देखा हो। वहाँ अगर खानदान में किसी ने दसवीं कक्षा पास कर ली हो, तो पूरे कुनबे और यहाँ तक की दूर-दराज की रिश्तेदारियों में भी उसकी इज्जत बढ़ जाती है और उसके नबावी ठाठ हो जाते हैं। मैंने जब दसवीं कक्षा पास की, तो मेरी माँ ने बड़े गर्व के साथ कहा 'बेटा तुम्हीं मेरे प्यारे बेटे हो, पूरे खानदान में सिर्फ़ तुमने ही आज दसवीं पास की है। हम लोग तो नहीं पढ़ पाये, मगर तुम्हें जरूर पढ़ा-लिखाकर डाक्टर बनायेंगे।' और उसके एक ही साल बाद इन सारे अरमानों पर पानी फिर गया। आर्थिक तंगी इतनी ज़्यादा हो गयी कि आज मेरा पूरा परिवार जिंदगी बसर करने के लिए दिल्ली में मज़दूरी कर रहा है। खैर, बात बिखर रही है। जब तक माँ-बाप के पास पूँजी रहती है, तब तक वो पूरी ताक़त झोंककर पढ़ाते हैं। लेकिन जब कोई रास्ता नहीं बचता, तो मजबूरी में कहना पड़ता है कि 'बेटा अब कुछ काम-धन्धा ढूँढ लो।' लेकिन अब तक जो नवाब साहब थे, अब वो काम कैसे करें! काम करने जायें उनके दुश्मन! ऐसे में, पढ़े-लिखे मज़दूरों के एक बहुत बड़े हिस्से को यह कहने में शर्म लगती है कि वो 'मज़दूर' हैं। वो गाँव में किसी के खेत में काम करने नहीं जाते। किसी का घर बनाने नहीं जाते। और यहाँ तक अपने खेत और अपने घर में भी काम नहीं करते। नौजवानों की यही पीढ़ी दिल्ली-बम्बई जैसे महानगरों का रुख करती है। यहाँ पर भी किसी फैक्टरी में काम करने में इन्हें अपनी बेइज़्ज़ती महसूस होती है, और वे तर्क देते हैं कि 'जब हमारे बाप-दादों ने किसी की नौकरी नहीं की, तो हम क्यों करें?!' एक कहावत भी है - 'चाहे सर पर रखनी पड़े टोकरी, मगर नहीं करेंगे नौकरी!' मतलब, नौकर नहीं बनेंगे, भले ही फेरी लगानी पड़े।

ऐसे पढ़े-लिखे नौजवानों का यही हाल होता है, और ये आबादी बड़ी ही जल्दी मल्टी-लेवल कम्पनियों के जाल में फँस जाती है। वे जल्द ही एम-वे, मोदी केयर, ऐलोवेरा, ड्यूसॉफ्ट, युनाइटेड इण्डिया, सहारा इण्डिया, आर.सी.एम., वेस्टीज, परफेक्ट मार्केटिंग सोल्यूशन जैसी सैकड़ों कम्पनियों में से किसी की पढ़ाई-पट्टी में फँसकर अपनी ज़िन्दगी को नर्क की तरफ धकेलने लगते है। और अपनी ज़िन्दगी के तीन-चार साल बर्बाद करने के बाद पता लगता है कि ये सब ढकोसला है। इन बने-बनाए बेवकूफों की जी तोड़ मेहनत के दम पर कम्पनी का नाम होता है और उसके प्रोडक्ट्स का प्रचार फ्री में हो जाता है जिससे कम्पनी को अरबों रुपये का फायदा होता है। मज़दूर अपनी नादानी के चलते मारा जाता है।

इसलिए रास्ता तो सिर्फ़ एक है कि आज मज़दूर वर्ग को अपने ऊपर गर्व होना चाहिए कि हम मज़दूर हैं, किसी के गुलाम नहीं। दुनिया को हम बनाते हैं। पूरी दुनिया को हम चलाते हैं। पूरी दुनिया में ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसमें हमारा हाथ न लगा हो। मतलब यह है कि हम ही दुनिया के मालिक हैं। हर मज़दूर को यह बात कड़वे सच की तरह समझनी चाहिए और अपनी दुनिया को वापस पाने के लिए हमेशा दिल में तड़प होनी चाहिए क्योंकि हमारी दुनिया पर किसी और का कब्जा है।

मुझे पता है

अब तुम पर ही है निर्भर
तुम्हारे कन्धों पर ही है,
बोझ, जिसे तुम ही ढो सकते हो।
बदल सकते हो तुम,
हाँ, हाँ, तुम ही,
इस अन्धेरे को,
प्रकाशमान और नेत्रोत्सव
दुनिया में।
अब समझना होगा तुम्हें,
तुम पीछे नहीं हट सकते,
तुम ही सबसे पीछे हो।
तुम्हें आगे बढ़ता देख
उनकी धुकधुकी बढ़ जाती है,
इसलिए धुत्त करके रखते हैं तुम्हें
भ्रम के नशे में,
वो जानते हैं, जानते हैं वो
समझते हैं और
सबसे अधिक डरते हैं,
वो डरते हैं लाल रंग से,
वो दिखावा करते हैं
न डरने का,
फिर भी डरते हैं वो
तुम्हारी एकता से।
तुम्हें निकलना होगा,
इस धुँधलेपन से, और गिराना होगा,
इस इमारत को
जिसकी नींव में दीमक लगी है,
क्योंकि तुमने ही बनायी है,
सिर्फ़ तुम ही बना सकते हो,
दुबारा।
मुझे पता है,
मुझे पता है तुम बनाओगे,
दुबारा, गिराने के बाद
दीमक लगी इमारत को
और तुम बनाओगे, फिर से,
इस गलीज़, गन्ध मारते समाज को,
नयी नींव के साथ, एक बार फिर।

– नितिन, दिल्ली

सभी बिगुल और आह्वान पुस्तिकाएँ यहाँ से प्राप्त करें:
जनचेतना
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
फ़ोन: 0522-2786782

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

(पेज 11 से आगे)

गुज़र जाने के बाद आलम यह है कि गाड़ी आगे बढ़ने की बजाय उल्टी दिशा में निकल चुकी है।

दरअसल ये नीति निदेशक सिद्धान्त कल्याणकारी बुर्जुआ राज्य की कीन्सियाई अवधारणा पर आधारित थे और अब जब पूरे विश्व में पूँजीवाद कल्याणकारी राज्य के लबादे से छुटकारा पाना चाह रहा है, तो ऐसे सिद्धान्तों का उनके लिए भी कोई मतलब नहीं रह गया है। हाँ, यह ज़रूर है कि संविधान में इन सिद्धान्तों की मौजूदगी से इस अमानवीय व्यवस्था के वीभत्स रूप पर पर्दा डालने में मदद मिलती है। इन सिद्धान्तों के ज़रिये शासक वर्ग और उसके टुकड़ों पर पलने वाले बुद्धिजीवी, जनता के बीच यह भ्रम पैदा करते हैं कि भले ही आज जनता को तमाम दिक्कतों और तकलीफ़ों का सामना करना पड़ रहा है, लेकिन धीरे-धीरे करके ये सिद्धान्त लागू किये जायेंगे जिनसे जनता की सारी समस्याओं का हल निकल आयेगा। इसलिए, जनता को इन सिद्धान्तों के भ्रमजाल से बाहर निकालना आज के दौर में क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रमुख कार्यभारों में से एक है।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर साथियो, 'आपस की बात' आपका पन्ना है। इसमें छापने के लिए अपने कारख़ाने, काम, बस्ती की समस्याओं व स्थितियों के बारे में, अपनी सोच के बारे में लिखकर हमें भेजिये। आपको 'बिगुल' कैसा लगता है, इसमें क्या अच्छा लगता है और क्या कमियाँ नज़र आती हैं, इसे और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है – इन बातों पर भी आपकी राय जानने से हमें मदद मिलेगी। आप नीचे दिये पते पर हमें पत्र लिख सकते हैं या बिगुल कार्यकर्ता साथी को ज़ुबानी भी बता सकते हैं। – सम्पादक मण्डल

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक के 'बिगुल' और 'मज़दूर बिगुल' के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं। आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **114, जनता मार्केट, रेलवे स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित) आजीवन - रु. 2000/-

हीरो मोटोकॉर्प लिमिटेड में मज़दूरों के हालात

गुड़गांव, हरियाणा के सेक्टर 34 में, हीरो मोटोकार्प लिमिटेड नाम की कम्पनी मोटर साइकिल व स्कूटी बनाती है। इस कम्पनी की भारत में तीन बड़ी शाखाएँ हैं – गुड़गांव, धारूहेड़ा व हरिद्वार में। इस कम्पनी में हर रोज़ 16 घण्टे में 6 हज़ार मोटर साइकिलें बनती हैं। इस कम्पनी में सिर्फ़ असेम्बली लाइन चलती है जहाँ पर मोटर साइकिलों के अलग-अलग हिस्सों को जोड़कर इसे तैयार किया जाता है। इसके पार्ट-पुर्जों की सप्लाई पूरे भारत में फैली लगभग 630 कम्पनियों के मार्फत होती है जिनमें लाखों मज़दूर काम करते हैं। अगर मोटर साइकिल के सभी पुर्जे हीरो मोटोकार्प बनाने लगे, तो इस कम्पनी को रोज 6,000 मोटर साइकिलें बनाने के लिए करीब डेढ़ लाख मज़दूर रखने पड़ेंगे। लेकिन इन सब झंझटों से बचने के लिए हीरो कम्पनी बने-बनाये पुर्जे सस्ते में खरीद लेती है और उनको असेम्बली लाइन में लाकर जोड़ देती है।

यह कम्पनी हर रोज़ 17 घण्टे तक चलती है – सुबह 6 बजे से रात 11 बजे तक। इस कम्पनी में दो शिफ्ट में काम होता है – सुबह 6 बजे से दोपहर 2:30 बजे तक और फिर दोपहर 2:30 बजे से रात 11 बजे तक। इस कम्पनी में 3 असेम्बली लाइनें हैं, जिनमें से एक पर स्कूटी बनती है और बाकी दो पर मोटरसाइकिल जुड़ती है। इस कम्पनी में परमानेण्ट वर्कर करीब एक हज़ार है, जिनका काम है - घूमते रहना, आराम करना व काम करवाना। ट्रेनी, कैजुअल व हेल्पर की श्रेणी में आने वाले बाकी लगभग 5 हज़ार वर्करों को 15 ठेकेदारों के माध्यम से भर्ती किया जाता है। मोटर साइकिल का पूरा काम यही ट्रेनी व कैजुअल वर्कर करते हैं और इनकी तनख़्वाह, परमानेण्ट वर्कर के मुकाबले एक चौथाई है। सभी एक हज़ार परमानेण्ट लेबर की तनख़्वाह लगभग 35 से 50 हज़ार के बीच है। जबकि आई.टी.आई. करके ट्रेनी व कैजुअल के रूप में भर्ती होने वाले वर्करों की तनख़्वाह मात्र 12,500 रुपये है, और पी.एफ. व ई.एस.आई. काटकर इन्हें कैश 10,000 रुपये मिलते हैं। जो वर्कर बिना आई.टी.आई. किये भर्ती होते हैं उनको बतौर हेल्पर भर्ती किया जाता है और उनकी तनख़्वाह 8 हज़ार रुपये है। लेकिन जहाँ तक काम की बात है, तो काम सभी वर्करों का लगभग एक ही है। लाइन पर रहने वाले वर्कर को एक मिनट की भी फुर्सत नहीं होती है क्योंकि लाइन लगातार चलती रहती है और लगातार लाइन के साथ अपनी जगह पर रहकर काम करना पड़ता है। एक लाइन पर करीब दो सौ से तीन सौ वर्कर काम करते हैं और इस कम्पनी में तीन लाइनें लगातार चलती रहती हैं।

छह हज़ार वर्कर होने पर भी इस कम्पनी में वर्कर पूरे नहीं पड़ते हैं। बाहर की कम्पनियों को अपने वर्कर इस कम्पनी में भेजने पड़ते हैं ताकि वो स्टाक माल को लाइन पर पहुँचाते रहें। कम्पनी के वर्करों को दो टाइम चाय-नाश्ता और खाना कम्पनी की तरफ से मिलता है। मोटोकार्प के लिए ही काम करने वाले बाहर के वर्करों के लिए चाय-नाश्ते पर पाबन्दी रहती है। यहाँ पर सुरक्षा गार्डों को सख़्त आदेश है कि बाहर के वर्करों को भगाते रहें। ये सुरक्षा गार्ड इन वर्करों को ऐसे भगाते हैं जैसे कुत्तों को भगाया जाता है। खैर, चाय तो कभी-कभार डाँट-डपट और गाली सुनकर मिल भी जाती है, मगर खाने की कैण्टीन में सख़्त पाबन्दी है। बाहर के वर्करों को खाने के लिए तीस रुपये खर्च करने पड़ते हैं और अगर बिना कूपन लिए खाने की लाइन में पकड़े गये, तो 3 घण्टे तक बर्तन साफ़ करने पड़ते हैं। अगर आप दूसरी कम्पनी में काम करते हैं, तो उस कम्पनी से आपका बायोडाटा निकालकर, जब से आप काम कर रहे हैं तब से रोज़ के हिसाब से 30 रुपये काट लेंगे और आप कुछ नहीं कर सकते।

इस कम्पनी में जगह-जगह मशीनें लगी हैं जिनमें आपको आने-जाने पर कार्ड पंच करना पड़ता है, और अगर आप एक मिनट की भी देरी से पहुँचे, तो आपका चार घण्टे का पैसा कट जायेगा और इसी तरह अगर एक मिनट पहले भी छुट्टी किये तब भी चार घण्टा का पैसा कटेगा।

– आनन्द, गुड़गांव

नम्बर एक हरियाणा की असलियत

हरियाणा के ज़्यादातर अख़बारों में, अख़बार के नाम के नीचे बड़े-बड़े विज्ञापन दुहाई दे-देकर हरियाणा को नम्बर एक का राज्य साबित करने पर तुले रहते हैं। जैसे कि 'सशक्त हरियाणा, सबसे आगे हरियाणा,' 'श्रमनीति लागू करवाने वाला पहला राज्य,' 'हरियाणा देशभर में श्रमिकों को सर्वाधिक न्यूनतम वेतन देने वाले राज्यों में अग्रणी', 'सरकारी कर्मचारियों की तर्ज पर एल.टी.सी. की सुविधा' वगैरह वगैरह....

ऐसे सैकड़ों विज्ञापन रोज़ हरियाणा के नम्बर एक होने के दावे ठोंकते हैं। भाई, मैं भी हरियाणा के गुडगांव शहर में आया। यहाँ ओरिएण्ट क्राप्ट, प्लाट नम्बर-7, सेक्टर-34 में काम पकड़ा। यहाँ मुझे नियुक्ति पत्र मिला जिसमें सुविधाओं का एक लम्बा जखीरा दर्ज था। कम्पनी में जगह-जगह साइनबोर्ड लगे हुए हैं। कम्पनी परिसर के लिए सभी मज़दूर समान हैं। यहाँ लिंग, जाति, धर्म के हिसाब से पदोन्नति नहीं होती है। कम्पनी परिसर में इच्छानुसार ओवरटाइम करने का अधिकार है। इस तरह की बातों से मज़दूरों को जागरूक कर रहे कई बोर्ड जगह-जगह लगे हुए हैं।

हरियाणा सरकार द्वारा तय की गयी न्यूनतम मज़दूरी इस प्रकार है – अकुशल को 4,967 रुपये, अर्द्धकुशल को 5,096 रुपये, कुशल को 5,226 रुपये। भाई वाह! ऐसा लगता है कि हुड्डा जी के राज्य हरियाणा में मज़दूरों की चाँदी है। मगर जमीनी हक़ीक़त कुछ और ही है। मैं ओरिएण्ट क्राप्ट में काम करता हूँ जिसके पूरे गुड़गांव मानेसर में करीब 35-36 प्लाण्ट हैं। इसका प्रतिदिन का कारोबार करोड़ों रुपये का है। ओरिएण्ट क्राप्ट, प्लाट नम्बर 7, सेक्टर 34 में हेल्परों की भर्ती तीन ठेकेदारों के ज़रिये होती है। कहने को तो कम्पनी में मज़दूरों की तनख़्वाह 4,967 रुपये है लेकिन इसमें ई.एस.आई. व पी.एफ. के नाम पर 14 प्रतिशत काट लेते हैं जो 6 महीने से पहले नहीं मिलता और 40 प्रतिशत के करीब मज़दूर तो 6 महीने किसी फैक्टरी में टिकते ही नहीं हैं। मतलब हाथ में सिर्फ़ 4300 रुपये तनख़्वाह आती है। नियुक्ति पत्र में 20 दिन में एक अरैण्ड्ड छुट्टी लेने की बात भी लिखी है जिसके पैसे भी काट लिए जाते हैं। नियुक्ति पत्र में लिखकर देते हैं कि इच्छानुसार ओवरटाइम करने पर वेतन के रेट से दोगुना दिया जायेगा। मगर हक़ीक़त ये है कि ओवरटाइम करना ही पड़ेगा और वो भी सिंगल रेट से भी कम रुपयों में – मतलब कि 23 रुपये प्रति घण्टा की दर से।

इसके अलावा, कोई चाय-नाश्ता कुछ भी नहीं मिलता। कैण्टीन बनी है, अगर कुछ खाना है तो रुपये खर्च करके खाओ। चाय के नाम पर 4 रुपये में 40 मि.ली. हल्का गर्म पानी मिलता है। बाकी खाने का अपना अलग रेट है। इस कम्पनी में पहले पीने का पानी भी नहीं था। पिछली गर्मियों में काफी कहा-सुनी होने पर पानी की व्यवस्था हुई। सुबह 9:30 बजे से शाम 6:15 की ड्यूटी करने पर 8 घण्टे के पैसे मिलते हैं। इसमें से मज़दूर के 45 मिनट लंच के नाम पर कट जाते हैं। पूरे महीने की तनख़्वाह 10 से 15 तारीख़ के बीच में मिलती है। 4300 रुपये महीना पर काम करने वाले वर्कर को 30 से 15 तारीख़ के बीच में अक्सर रुपयों की ज़रूरत पड़ जाती है। उस समय, ठेकेदार के आगे-पीछे भीख माँगते रहो, तब भी वे एक रुपया तक नहीं देते और ऐसे समय में 10 रुपये सैकड़ा के हिसाब से ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है क्योंकि खाने-पीने का सामान, किराया-भाड़ा, दवा, सब्जी व किसी अन्य बुनियादी ज़रूरत का सामान उधारी की दुकान पर नहीं मिलता। इतना सब करने के बाद भी मज़दूर के घण्टे काटना व हाजिरी काट लेना जैसी चीज़ें चलती रहती हैं। अगर काम है तो जबरन ओवरटाइम करना पड़ता है, और अगर काम नहीं है तो जबरन भगा भी देते हैं। अगर कम्पनी में ही बने रहो तो हाजिरी ही नहीं चढ़ायेंगे। यहाँ काम करने के बाद हरियाणा के नम्बर एक होने की असलियत पता चली और यह अन्दाजा हुआ कि हरियाणा को असल में किन थैलीशाहों के लिए नम्बर एक कहा जाता होगा!

– एक मज़दूर, गुडगांव

करावल नगर मज़दूर यूनियन ने मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन के दूसरे चरण की शुरुआत की

करावल नगर मज़दूर यूनियन ने इलाक़े में असंगठित क्षेत्र के लाखों मज़दूरों की माँगों को लेकर मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन की नयी शुरुआत की। वैसे ज़्यादातर मज़दूर साथी जानते हैं कि हमने 1 मई 2011 को देश की राजधानी में हज़ारों मज़दूरों के जुटान के साथ अपना 26 सूत्री माँगपत्रक प्रधानमन्त्री और श्रममन्त्री को सौंपकर यह ऐलान किया था कि मज़दूरों का यह पहला जुटान सिर्फ़ एक चेतावनी है कि मज़दूरों की इन जायज माँगों को पूरा किया जाये, वरना आने वाले समय में मज़दूरों का ये सैलाब एक सुनामी की तरह शासक वर्ग की नींद हराम कर देगा।

अगर हम करावल नगर औद्योगिक क्षेत्र पर नज़र डाले तो यहाँ सैकड़ों क़िस्म की छोटी फैक्टरियाँ, वर्कशाप और बादाम के गोदाम हैं जहाँ लाखों मज़दूर आधुनिक गुलामों की तरह काम करते हैं। इनमें बादाम प्रसंस्करण, कुकर, गत्ता, गारमेण्ट, प्लास्टिक दाना, तार, खिलौना प्रमुख हैं। इनमें से ज़्यादातर में 10 से 20 मज़दूर काम करते हैं। कुछ एक फैक्टरियों में मज़दूरों की संख्या 50 से अधिक है। इसके अलावा भवन निर्माण के मज़दूरों से लेकर रिक्शा-ठेला मज़दूरों की संख्या हज़ारों में हैं। ऐसे में, करावल नगर मज़दूर यूनियन किसी एक पेशे या फैक्टरी की यूनियन नहीं है, बल्कि यह इलाक़ाई यूनियन के तौर पर मज़दूरों की बीच काम कर रही हैं जो एक तरफ मज़दूरों की संकुचित पेशागत प्रवृत्ति को तोड़ती है और साथ ही मज़दूरों के आर्थिक संघर्षों के साथ उनके बुनियादी नागरिक अधिकारों के संघर्ष का नेतृत्व भी करती है। वैसे भी, असंगठित मज़दूरों को संगठित करने की चुनौती में इलाक़ाई मज़दूर यूनियन मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में एक जबरदस्त अस्त्र सिद्ध हो सकता है। इसके मद्देनजर, करावल नगर मज़दूर इलाक़े में एक परचा वितरित किया गया है, जिसे लेकर यूनियन का प्रचार दस्ते मज़दूरों की लॉजों, फैक्टरी गेट से लेकर लेबर चौक तक नुक्कड़ सभाएँ करके एक संघर्ष की शुरुआत कर रहे हैं।

आपस की बात : एक मज़दूर का दर्द

मैंने देखी है...
एक मज़दूर की आँखों में ख़ुशी
चेहरे की रौनक
बात-बात पर हँसना
भरी सभा में लोगों को हँसा देना
बड़ी जल्दी ही लोगों के दिलों में जगह बना लेना
आपस में घुलमिल जाना
एक-दूसरे से सुख-दुख पूछना
और बताना – मैंने देखा है।

मैंने देखा है...
वो महीने की 20 तारीख़ का आना
और 25 तारीख़ तक अपने ठेकेदार से
एडवांस के एक-एक रुपये के लिए गिड़गिड़ाना
और उस निर्दयी जालिम का कहना कि
'तुम्हारी समस्या है।
मुझे इससे कोई मतलब नहीं,' – मैंने देखा है।

मैंने देखा है...
वो 25 से 30 तारीख़ तक चेहरे पर छायी निराशा
वो मज़दूरों की भरी महफिल में कुछ न बोलना
चुपचाप एकान्तवास में चले जाना...
खलल पड़ती है, अगर कोई आ जाता है पास
दिल में उठती कसक,
जब कोई पूछता है, हाल-चाल –
मैंने देखा है।

मैंने देखा है...
वो 1 से 5 तारीख़ तक
अपनी बीड़ी, तम्बाकू के लिए
यार-दोस्तों से वो 4-5 रुपये उधार माँगना
और न मिल पाना किसी से उधार
क्योंकि ऐसा ही कुछ हाल होता है
लगभग सभी का – मैंने देखा है।

मैंने देखा है...
वो 5 से 10, 12, 15 तारीख़ तक का समय
जब बेसब्री से इन्तजार होता है
कि आज मिल जायेगी तनख़्वाह,
मगर नहीं मिलती
और घिर आती है चेहरे पर उदासी –
मैंने देखा है।
फिर इन्हीं उदास दिनों में तकादादारों का
बार-बार टोकना,
दुकानदार का ऊँची आवाज में पूछना :
'और भाई, क्या इरादा है?'
मालिक का धमकी देना... – मैंने देखा है।
एक मज़दूर का दर्द... – मैंने देखा है।

– आनन्द, हरियाणा

‘नकद सब्सिडी योजना’ –एक ग़रीब विरोधी योजना

महज चुनावी कार्यक्रम नहीं बल्कि व्यापारियों का मुनाफ़ा और बढ़ाने की योजना

पिछले साल 15 दिसम्बर को दिल्ली की कांग्रेस सरकार ने ‘अन्नश्री’ योजना की शुरुआत की। खाद्य सुरक्षा हेतु प्रत्यक्ष नकदी अंतरण योजना के अन्तर्गत दिल्ली के पन्द्रह लाख परिवारों को खाद्य सामग्री खरीदने के लिए प्रति माह 600 रु. दिए जायेंगे। दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने इस योजना की घोषणा करते हुए बड़ी बेशर्मी के साथ कहा कि पाँच लोगों के परिवार की खाद्य संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए 600 रु. मासिक काफ़ी हैं। यानी प्रति व्यक्ति/प्रति दिन 4 रु.; अब 4 रु. में कोई व्यक्ति क्या खाना खायेगा यह तो खुद शीला दीक्षित ही बता सकती है। असलियत यह है कि एक परिवार को महज ज़िन्दा रहने के लिए खाद्य पदार्थ खरीदने के लिए नकद दी जा रही राशि से पाँच गुना राशि की ज़रूरत होती है। गौरतलब है कि दिल्ली में इस साल के अन्त से पहले विधानसभा चुनाव हैं और 2014 में लोकसभा के चुनाव है। केन्द्र में रिकॉर्ड तोड़ घपलों-घटालों और कई तरह के भ्रष्टाचार से घिरी कांग्रेस नेतृत्व वाली यूपीए सरकार भी 2014 के चुनावों से पहले अपने दाग-धब्बों को नई-नई लोकलुभावन योजनाओं से छुपाने का प्रयास में लग गई है।

आपको याद होगा कि पिछले साल अगस्त में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने घोषणा की थी कि कुछ फ्री टॉक-टाईम के साथ हर ग़रीब आदमी तक एक मोबाइल फोन पहुँचाया जायेगा। इसी क्रम में 15 दिसम्बर से दिल्ली में और 1 जनवरी, 2013 से देश के 51 जिलों में ‘नकद सब्सिडी योजना’ को लागू किया गया। केन्द्र सरकार ने घोषणा की कि सार्वजनिक सुविधाओं में मिलने वाली सब्सिडी को अब से आधार कार्ड के माध्यम से बैंकों में नकद हस्तांतरित किया जायेगा। खाद्य सुरक्षा हेतु प्रत्यक्ष नकदी अंतरण योजना को केन्द्र सरकार द्वारा क्रान्तिकारी योजना के रूप में प्रचारित करने के पीछे तर्क है कि ‘सार्वजनिक वितरण प्रणाली’ (पी.डी.एस.) में बहुत ही घपला होता है; लेकिन इस योजना के तहत सब्सिडी का पैसा सीधे प्रत्येक व्यक्ति के खाते में आने से सरकारी सेवाओं में दलाली, भ्रष्टाचार, फर्जी निकासी, बर्बादी और चोरी से मुक्ति मिलेगी। इस परियोजना के तहत वृद्धावस्था और विधवा पेंशन, मातृत्व लाभ और छात्रवृति जैसी 34 योजनाएँ आती है। यह योजना यह खाद्य, स्वास्थ्य सुविधाओं और ईंधन तथा खाद सब्सिडियों के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) जैसी तमाम योजनाओं को आधार (कार्ड) आधाारित नकद हस्तांतरण के अधीन लाने की दिशा में एक कदम है।

दिल्ली में विधानसभा और देश में लोकसभा चुनावों से पहले इस योजना की घोषणा करना वोट बैंक की बढ़ाने की कोशिश तो है ही; साथ ही इस योजना का खतरनाक पहलू यह भी है कि आने वाले समय में इस योजना के माध्यम से सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) के रहे-सहे ढांचे को भी निर्णायक तरीक़े से ध्वस्त करके खाद्यान्न क्षेत्र को पूरी तरह बाज़ार की शक्तियों के हवाले कर दिया जायेगा। इससे साफ़ तौर पर इस क्षेत्र के व्यापारियों के मुनाफ़े में कई गुना की बढ़ोतरी होगी।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुर्दशा के विकल्प में इस योजना की शुरुआत करते हुए कहा गया था कि इस योजना के तहत लाभार्थियों को अपनी ज़रूरत के मुताबिक खाद्य पदार्थ और अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीदने का विकल्प मिल गया है। लेकिन जिस योजना को सरकार ग़रीबों के लिए बढ़िया बता रही है; उस पर स्वयं उन लोगों की राय अलग ही है। एक सर्वेक्षण से पता चला कि 90 फीसदी से ज्यादा ग़रीब लोग खाद्य पदार्थ नकद हस्तांतरण के मुकाबले सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) से लेना पसंद करते हैं। इस योजना के तहत बैंकिंग स्टाफ को जैसे पूरी तरह ईमानदार माना गया है; जबकि वे ग़रीबों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त और उनके विरोधी हो सकते है।

और तो और, यह योजना देश के जिन जिलों में प्रयोग के तौर पर लागू की गयी, वहाँ के अनुभव नकारात्मक ही हैं। झारखण्ड के रामगढ़ जिले में मनरेगा के तहत भुगतान आधार आधारित नकदी हस्तांतरण के अधीन किए गये थे। इसके भयानक परिमाण सामने आये और जिला प्रशासन काम का बोझ संभाल ही नहीं सका। आबादी का वो अनुपात जिसकी यूआईडी संख्याएं और कल्याणकारी योजनाओं के विवरण मेल खाते थे, दो फीसदी से भी कम था। इलाके के बैंक कर्मचारी के अनुसार मनरेगा के आधे मज़दूरों की उंगलियों के निशानों को मिलान नहीं हुआ। रामगढ़ के एक ब्लॉक में 8,231 ''सक्रिय'' कार्ड धारकों में से केवल 162 को ही आधार कार्ड के ज़रिये भुगतान हो पाया। इस योजना की विफलता का एक अन्य उदाहरण राजस्थान के अलवर जिले के एक संपन्न गाँव में भी सामने आया। एक साल पहले सरकार ने कोटकासिम गाँव के 25,843 राशनकार्ड धारकों को 15.25 रु. लीटर की दर से मिट्टी का तेल बेचना बंद कर दिया और इसकी जगह उनसे 49.10 प्रति लीटर की बाजार दर से पैसे वसूल किए। इस अन्तर को प्रत्येक तीने महीने में उनके खाते में जमा किया जाना था। लेकिन उस क्षेत्र में बैंक की शाखा औसतन तीन किलोमीटर है और कुछेक के लिए तो 10 किलोमीटर तक है। इसलिए केवल 52 फीसदी परिवारों के ही बैंक खाता खुल पाए; बाकी तो इस योजना से ही बाहर हो गए। कुछ परिवारों को मूल्य में अंतर की पहली किस्त मिली और उसके बाद कुछ नहीं मिला और ज्यादातर को तो पूरे साल कुछ नहीं मिला। इस बीच मिट्टी के तेल की बिक्री 84,000 लीटर से घटकर सिर्फ़ 5000 लीटर रह गई यानी 94 फीसदी कम हो गई। लोगों को सूखी टहनियाँ, कपास और सरसों के डंठलों या खरपतवार को जला कर काम चलाना पड़ा।

ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, चीन, कनाडा और जर्मनी में भी इस तरह की योजनाओं के परिणाम खराब आने के बाद उन्हें बन्द कर दिया गया था। जबकि भारत की केन्द्र सरकार का इरादा अप्रैल 2014 से इस योजना को पूरे देश में लागू करने का है। लेकिन क्या इतने समय में सभी के आधार कार्ड बन जाएंगे और क्या समूची ग़रीब आबादी के पास बैंक खाते की सुविधा होगी? इस योजना का ढांचागत आधार तो कमजोर है ही; बल्कि सरकार द्वारा जिस मकसद से इस योजना को शुरू किया जा रहा है वह भी पूरा नहीं होने वाला है। खाद्य साम्रगी के लिए मिले पैसे उसी मद में खर्च होने की सम्भावना बहुत कम ही है। यह एक सच्चाई है कि तमाम ग़रीब लोग अक्सर कर्ज या उधार से दबे रहते है। जैसे ही उनके खाते में पैसा आएगा; कर्ज वसूलने वाले सिर पर सवार होंगे या किसी अन्य दूसरे ज़रूरी खर्चे में वह पैसा खर्च हो जायेगा।

आधार आधारित नकद हस्तांतरण की योजना न केवल बेहद खर्चीली है (अनुमानत: 45,000-1,50,000 करोड़ रुपये) बल्कि वास्तव में पात्र लाभार्थियों को बाहर रखने और अपात्रों को गलत ढंग से शामिल किए जाने की पूरी संभावना है। सरकार ने ग़रीब परिवारों की सूची बनाने का काम कुछ एन.जी.ओ. को सौंपा है। दिल्ली में यह काम जी.आर.सी. के माध्यम से अलग-अलग एन.जी.ओ. को दिया गया। यहीं के कच्ची खजूरी इलाके में अन्नश्री योजना के तहत कई ऐसे लोग शामिल किए गये है जिनका दिल्ली में अपना घर है और वे किसी अच्छी नौकरी पर लगे हुए है। जबकि इस इलाके के सैकड़ों मज़दूरों के परिवारों का इस योजना की सूची में नाम लिखा ही नहीं गया।

लोगों को सबसे बड़ा डर है कि इस योजना के लागू होने के बाद महँगाई में क्या होगा? सरकार कह रही है कि पैसों की राशि महँगाई के अनुसार होगी। लेकिन असलियत यह होगी कि सरकार तभी पैसा बढ़ायेगी जब चुनाव नजदीक होंगे–इसके अलावा नहीं बढ़ायेगी। उधार, बाज़ार में हर रोज़ खाद्य साम्रगी की कीमतें बढ़ती जायेंगी। इस योजना में नकद हस्तान्तरण से परिचलन में भारी मात्रा में पैसा आएगा जिससे मुद्रास्फीति बढ़ेगी और लोगों की क्रय शक्ति कम हो जायेगी।

विपक्ष में बैठी भाजपा व अन्य कई चुनावी पार्टियों ने इस योजना का महज दिखावटी विरोध किया है। स्वयं पूँजीपतियों की सेवा करने वाली ये पार्टियाँ सिर्फ़ इतना कह रही है कि इस योजना को चुनावों के कारण बिना तैयारी के घोषित किया गया। यानी इनके मुताबिक अच्छी तैयारी के साथ इस ‘ग़रीब विरोधी योजना’ को लागू किया जाये तो ज़्यादा अच्छा रहेगा। अब इस सच्चाई को ग़रीब आबादी भी समझने लगी है कि सरकार किसी भी चुनावी पार्टी की बनें सबको अपने-अपने तरीक़े से पूँजीपतियों की सेवा के लिए योजनाएँ बनानी है।

1990 के बाद से भारत में जो नवउदारनीतियाँ लागू हुई उसी के तहत पहले सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) से बहुसंख्यक ग़रीब आबादी को अलग-अलग श्रेणियों (लाल कार्ड, पीला कार्ड आदि) में बाँटकर एक आबादी को इस प्रणाली से बाहर कर दिया गया। अब इस योजना के माध्यम से सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) के रहे-सहे ढांचे को भी खत्म किया जा रहा है।

यह बात सही है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) में कई कमियाँ है। लेकिन पी.डी.एस. की कमियों को ठीक न करते हुए इस प्रणाली के विकल्प में आने वाली यह योजना ग़रीब आबादी के लिए नुकसानदायक ही है। ज्यादा सही यही होगा कि पी.डी.एस. की कमियों को ठीक किया जाये। पी.डी.एस. की सबसे बड़ी कमी है ग़रीबी रेखा का निर्धारण ही सही तरीक़े से नहीं किया गया है। अगर इस देश की सरकारें इस देश के आम लोगों का प्रतिनिधित्व करती है तो उन्हें सबसे पहले ग़रीबी रेखा का पुन: निर्धारण करना चाहिए; मौजूदा ग़रीबी रेखा हास्यास्पद है। उसे भुखमरी रेखा कहना अधिक उचित होगा। पौष्टिक भोजन के अधिकार को जीने के मूलभूत संवैधानिक अधिकार का दर्जा दिया जाना चाहिए तथा इसके लिए प्रभावी क़ानून बनाया जाये ।

इसके लिए ज़रूरी है कि सार्वजानिक वितरण प्रणाली का ही पुनर्गठन किया जाना चाहिए और अमल की निगरानी के लिए ज़िला स्तर तक प्रशासनिक अधिकारी के साथ-साथ लोकतान्त्रिक ढंग से चुनी गयी नागरिक समितियाँ होनी चाहिए। लेकिन पूँजीपतियों के इशारों पर चलने वाली मौजूदा सरकारें बिना किसी जनदबाव के ऐसी नीतियाँ नहीं ही बनाएंगी। इस देश की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी को चाहिए कि भोजन के अधिकार को मुलभूत संवैधानिक अधिकार बनाने के लिए संघर्ष तो करे ही; साथ ही सरकार कि ऐसी जनविरोधी योजनाओं का विरोध भी होना चाहिए।

● योगेश

बेहतर भारत बनाने की मुहिम किसके लिए...

(पेज 5 से आगे)

पोस्टर, बैनर और इतने भव्य मंच आदि पर खर्च हुआ लाखों-करोड़ रुपया कहाँ से आता हैं? वैसे इस सवाल का जवाब ज़्यादा मुश्किल नहीं है क्योंकि श्री-श्री रविशंकर के सारे बैनरों के नीचे चान्दनी चौक से लेकर करोल बाग के सारे व्यापारी संघ के नाम साफ़-साफ़ दिख जाते हैं और वही व्यापारी हैं जो अपनी दुकानों-शोरूम पर काम कर रहे मज़दूरों से कोल्हू के बैल की तरह काम लेते हैं और किसी भी श्रम-कानून का पालन नहीं करते हैं। लेकिन, ज़ाहिर है कि श्री-श्री रविशंकर मज़दूरों के श्रम की लूट पर एक शब्द भी नहीं बोलेंगे क्योंकि इस लूट का एक हिस्सा श्री-श्री जी को चंदे के रूप में मिलता हैं। वैसे भी श्री-श्री रविशंकर के प्रवचन को सुनाने वाली आबादी खाए-पीए उच्च वर्ग से लेकर सेवा क्षेत्र में लगी मध्य वर्ग की वो आबादी हैं जिससे बाबा संगीतमय आध्यामिक नशे की खुराक देकर पूँजीवादी व्यवस्था के बेहतर पुर्जे बने रहने की शिक्षा देते हैं। स्पष्ट है, एक ओर श्री-श्री रविशंकर पूँजीवादी व्यवस्था के मजबूत सेवक हैं वहीं दूसरी तरफ वे खुद भी एक पूँजीपति हैं क्योंकि इनका ‘आर्ट ऑफ लिविंग’ फाउण्डेशन करीब 152 देशों में एक व्यवसाय के तौर पर काम कर रहा है। वैसे ‘आर्ट ऑफ लिविंग’ का मतलब है; जीवन जीने की कला। अब यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हज़ारों रुपये की फीस लेकर अमीरज़ादों को किस क़िस्म की ‘ज़िन्दगी जीने की कला’ सिखाई जाती होगी।

खैर छोड़िये, बाबा के जीने की कला से बेहतर बाबा के पैसा कूटने की कला देखते हैं। जुलाई 2007 तक ‘आर्ट ऑफ़ लिविंग’ फाउण्डेशन की कुल परिसम्पत्ति 77 लाख डॉलर की थी। जुलाई 2006 से जून 2007 तक इसकी कुल आय 55 लाख डॉलर होगी जिसमें से 35 लाख डॉलर कोर्स की फीस के रूप में और 17 लाख डॉलर ''जन-समर्थन'' के रूप में प्राप्त हुई। इस साल इनके द्वारा किया गया खर्च 36 लाख डॉलर था; यानी सीधे-सीधे 19 लाख डॉलर का शुद्ध मुनाफा। इसलिए पूँजीपतियों के ये बाबा खुद भी एक पूँजीपति से कम नहीं हैं। और, पूँजीपति बाबा का नज़रिया आम मेहनतकश आबादी के लिए वही होगा जो एक पूँजीपति का होता है।

अब इस बात को समझने में ज़रा सी भी परेशानी नहीं होनी चाहिए कि इस बाबा द्वारा चलाया गया ‘वालण्टियर फ़ॉर बेटर इण्डिया’ यानी बेहतर भारत बनाने का अभियान किसके लिए है! स्पष्टत: यह ‘बेहतर भारत’ उस खाते-पीते मध्यवर्ग, व्यवसायी और पूँजीपति वर्ग के लिए है जिसकी सेवा में मेहनतकश आबादी चुप्पी साधे लगी रहे।

हमें समझना होगा कि शासक वर्ग पूँजी की सेवा करने वाले बाबाओं के प्रभाव को बढ़ाने के लिए एक ओर ''धर्म और आध्यात्म’ रूपी ‘अफ़ीम’ का इस्तेमाल करता है तो दूसरी ओर कुछ सुधारवादी काम का भ्रमजाल भी बिछाता है। हमें ज़रूरत है कि ऐसे भ्रमजाल से बचने के लिए अपनी वर्ग शक्ति और वर्ग चेतना को बढ़ाये और मज़दूर वर्ग की एकता को व्यापक करें।

● अमित

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों की ''न्याय अधिकार रैली'' और उनके समर्थन में देशव्यापी प्रदर्शन।

(पेज 10 से आगे)

भी देश के हुक्मरानों को बर्दाश्त नहीं हैं। यही कारण है कि आज मज़दूरों पर हो रहे बर्बर दमन के ख़िलाफ़ न्यायपालिक से लेकर मीडिया तक मज़दूरों को ''अपराधी'' और ''आंतकी'' की तरह पेश कर रहे हैं। जबकि ये वही मज़दूर हैं जिनके दम पर आज मारुति सुज़ुकी ने अपने एक प्लाण्ट से चार प्लाण्ट खड़े कर लिए हैं और दस साल में 105 करोड़ के मुनाफ़े से 2,289 करोड़ के मुनाफ़े तक की छलाँग लगायी है।

इसके बाद क़रीब दो बजे तक तमाम संगठनों, यूनियनों के वक्ताओं ने मारुति आन्दोलन के समर्थन में अपनी बात रखी। फिर, सभा को रैली का रूप दे दिया गया जो मुख्यमन्त्री हुड्डा के आवास का घेराव करने के लिए सड़क पर उतर पड़ी। लेकिन कुछ ही दूरी में लगाये गये पुलिस-प्रशासन के बैरिकडों पर रैली को रोक लिया गया। यहाँ बिगुल मज़दूर दस्ता की शिवानी ने रैली को सम्बोधित करते हुए बताया कि कल ही देश में 63वें गणतन्त्र दिवस का जश्न मानाया गया है लेकिन कैसी विडम्बना है कि आज भी अपने संवैधानिक हक़ों और न्याय के लिए लड़ रहे संघर्षरत मज़दूरों पर बर्बर दमन होता है। जबकि देश में सारे श्रम-कानून का उल्लंघन करने वाले, गिरफ़्तार मज़दूरों को बर्बर यातनाएँ देने वाले पूँजीपतियों, नेताओं और नौकरशाहों पर कोई कार्रवाई नहीं होती है जो साफ़ कर देता है कि ये जनतन्त्र नहीं धनतन्त्र हैं। उन्होंने आगे कहा कि साथियो, हमें अपने छह माह के आन्दोलन से सबक़ निकालने चाहिए कि एक-एक दिन के प्रदर्शनों और धरनों का दौर बीत चुका है। अब हमें निर्णायक संघर्ष की तैयारी के लिए रावण की लंका में अंगद की तरह पैर जमाना होगा, यानी हमें एक जगह खूँटा गाड़कर बैठना होगा। हर रोज़ मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन की टोलियाँ पूरे एन.सी.आर. क्षेत्र में अन्य सभी यूनियनों और मज़दूर संगठनों से समर्थन की माँग करने जायेंगी और अपने जुटान को और ज़्यादा मज़बूत बनायेंगी। इसके अलावा, दिल्ली के तमाम छात्र, युवा, स्त्री और अन्य जनसंगठन भी आपके समर्थन में आयेंगे ही आयेंगे। इसलिए दिल्ली में जुटान जल्द से जल्द किया जाना चाहिए और एक दिन के लिए नहीं बल्कि डेरा डालने के लिए। इसके अलावा अब और कोई रास्ता नहीं है। साथ ही बिगुल मज़दूर दस्ता का मानना है कि अनिश्चितकालीन धरने की सबसे सही जगह हरियाणा के गुड़गाँव में, फरीदाबाद या रोहतक में नहीं है बल्कि दिल्ली में है। हमें वहीं डेरा डालना चाहिए। यही वह जगह है जहाँ से हमारे प्रदर्शन को मीडिया कवरेज मिलेगी और मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का संघर्ष पूरे देश के सामने जाहिर होगा और इसी प्रक्रिया से प्रशासन और सरकार पर यह दबाव पड़ेगा कि वह हमारी बातों को सुने।

रैली के अन्त में, मारुति मज़दूरों को एक बार फिर मुख्यमन्त्री भूपेन्द्र हुड्डा के निजी सचिव द्वारा सिर्फ़ आश्वासन ही मिला। जिसमें कहा गया कि मुख्यमन्त्री जी का ऑपरेशन हुआ है जिसकी वजह से वह आज नहीं मिल पायेंगे, इसलिए मुलाक़ात का वक़्त 13 फ़रवरी तय कर दिया गया। साफ़ है कि मुख्यमन्त्री पूँजीपतियों सेवक के रूप में बेहतरीन भूमिका अदा कर रहे हैं और आन्दोलन को लम्बा खींचकर मज़दूरों को थकाने की योजना बना रहे हैं। ऐसे में मारुति के मज़दूरों का आन्दोलन आपनी ताक़त को सही दिशा और कार्यक्रम पर लगाकर ही विजय पा सकता है।

5 फ़रवरी को देशव्यापी प्रदर्शन

27 जनवरी की रोहतक रैली के बाद, मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने आन्दोलन पर बढ़ते राजकीय दमन के ख़िलाफ़ 5 फ़रवरी को देशव्यापी प्रदर्शन की अपील जारी की। यूनियन द्वारा जारी की गयी अपील के समर्थन में क़रीब 15 राज्यों में अलग-अलग जगहों पर प्रदर्शन हुए जिनमें कई यूनियनों, जनवादी संगठनों से लेकर छात्र-युवा संगठनों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

देश की राजधानी दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर क़रीब 12 संगठनों ने मारुति के मज़दूरों के आन्दोलन के समर्थन में और राजकीय दमन के ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया। प्रदर्शन की शुरुआत में राजपाल ने बताया कि मारुति मज़दूरों पर हो रही एकतरफ़ा कार्रवाई देश के मज़दूर आन्दोलन पर हमला है, इसलिए पूरे देश के मज़दूरों को मारुति मज़दूरों के समर्थन में आवाज उठानी होगी। साथ ही, उन्होंने आन्दोलन के लिए आर्थिक सहयोग जुटाने की अपील भी की। पीयूडीआर के गौतम नवलखा ने कहा कि मज़दूरों का आन्दोलन सिर्फ़ ज्ञापन देने या अर्जी देने से सफल नहीं होगा, बल्कि मज़दूरों को सड़कों पर उतरकर संघर्ष का जुझारू रास्ता अख़्तियार करना होगा क्योंकि हमें यह समझना होगा कि जिन मन्त्रियों को हम ज्ञापन सौंप रहे हैं वही लोग आज उदारीकरण-निजीकरण की मज़दूर-विरोधी नीतियों को खुले आम लागू कर रहे हैं।

इसके बाद बिगुल मज़दूर दस्ता के अभिनव ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि मारुति के मज़दूरों के संघर्ष को सात महीने हो गये हैं और अब एक-एक दिन के प्रदर्शन व अलग-अलग मन्त्रियों को ज्ञापन देने का दौर ख़त्म करना होगा क्योंकि सिर्फ़ यही करते रहने से कुछ हासिल नहीं हो रहा है। इसलिए, अगर हम चाहते हैं कि केन्द्र सरकार और हरियाणा सरकार हमारी माँगों पर ध्यान दे तो हमें खूँटा गाड़कर एक जगह बैठ जाना होगा। उन्होंने कहा कि मारुति के मज़दूर अगर पूरी ताक़त के साथ डट जायें तो सरकार को तो दिक्क़त होगी ही, साथ ही केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों को भी समर्थन देने के लिए मजबूर होना होगा और ऐसे धरने की सबसे सही जगह राजधानी दिल्ली ही हो सकती है। हम पूरी तैयारी के साथ दिल्ली में डट जाते हैं तो ज़्यादा संभावना है कि हमारा आन्दोलन विजयी हो। अन्य तमाम संगठनों और यूनियनों के वक्ताओं ने भी मारुति मज़दूरों के समर्थन की बात कही। प्रदर्शन में मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के साथ बिगुल मज़दूर दस्ता, पीयूडीआर, इंक़लाबी मज़दूर केंद्र, रैडिकल नोट्स, आल इण्डिया फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन (न्यू), क्रान्तिकारी नौजवान सभा, आइसा आदि संगठनों ने हिस्सेदारी की तथा प्रधानमन्त्री के नाम एक ज्ञापन सौंपा, जिसमें पुलिस द्वारा दमन बन्द किये जाने, मज़दूरों पर लगाये गये फ़र्जी मुकदमे वापस लिए जाने, बर्ख़ास्त किये गये 2,500 मज़दूरों को काम पर वापस लेने व मज़दूरों के दमन-उत्पीड़न के लिए ज़िम्मेदार मालिक, प्रबन्धन और पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ उचित कार्यवाही करने की माँग की गयी।

लखनऊ में विधानसभा के सामने बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, रिहाई मंच और लखनऊ विवि के छात्रों ने मारुति के मज़दूरों पर हो रहे दमन के ख़िलाफ़ एकजुटता जाहिर की। नौजवान भारत सभा के आशीष ने कहा कि मज़दूरों पर हो रहे हमले के ख़िलाफ़ हर इंसाफ़पसन्द, न्यायप्रिय नौजवान को खड़ा होने की ज़रूरत है। सामाजिक कार्यकर्त्ता कात्यायनी ने कहा कि मज़दूरों पर हो रहे राजकीय दमन का शिकार सिर्फ़ हरियाणा के मज़दूर ही नहीं बल्कि पूरे देश के मज़दूर हैं, जिसकी ताज़ा मिसाल गोरखपुर आन्दोलन है जहाँ पुलिस-प्रशासन मालिकों के एजेण्ट की भूमिका अदा करता रहा है। प्रदर्शन में हरियाणा सरकार विरोधी नारे लगाये गये और छात्र-मज़दूर एकता को मजबूत करने की अपील की गयी। प्रदर्शन को लालचन्द्र, शाहनवाज आलम ने सम्बोधित किया।

लुधियाना में कारख़ाना मज़दूर यूनियन, टेक्सटाइल हौजरी कामगार यूनियन, जनवादी अधिकार सभा, लोक एकता मंच, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन आदि संगठनों ने लेबर कोर्ट से लेकर डी.सी. कार्यालय तक रैली निकाली। डी.सी. कार्यालय पर हुए दो घण्टे के ज़ोरदार प्रदर्शन में मज़दूरों ने मारुति के मज़दूरों के समर्थन में नारे लगाये। लुधियाना कारख़ाना मज़दूर यूनियन के राजिवन्दर ने कहा कि मारुति के मज़दूरों के समर्थन में लुधियाना का हर एक मेहनतकश मज़दूर खड़ा है क्योंकि वह जानता है कि आज मारुति मज़दूरों का संघर्ष जिन माँगों को लेकर लड़ रहा है वो देश ही नहीं दुनिया के मज़दूर आन्दोलन की बुनियादी माँग है, इसलिए हमारी वर्ग एकजुटता हमेशा मारुति मज़दूरों के साथ रहेगी।

मुम्बई के दादर में मारुति के मज़दूरों के समर्थन में एक सभा आयोजित की गयी। ट्रेड यूनियन सोलिडैरिटी, बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन (मुम्बई) आदि संगठनों ने इसमें हिस्सेदारी की। सभा की शुरुआत में मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के महावीर धीमान ने मारुति के मज़दूरों के संघर्ष और उन पर हो रहे राजकीय दमन के बारे में बताया। बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रशान्त ने कहा की मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों ने स्वतन्त्र ट्रेड यूनियन बनाकर संशोधनवादी ट्रेड यूनियन की नाकामी को तो सामने रखा, लेकिन अब मज़दूरों को ये समझना होगा कि मारुति मज़दूरों का आन्दोलन एक फैक्टरी की चौहद्दी को तोड़कर इलाक़ाई पैमाने पर एकजुटता बनाये तभी यह दीर्घकालिक तौर पर एक सफल मज़दूर आन्दोलन बन सकता है।

पटना में जन अभियान, जनवादी मज़दूर-किसान समिति, बिगुल मज़दूर दस्ता, मज़दूर पत्रिका आदि संगठनों ने मिलकर ने गाँधी मैदान से लेकर पटना स्टेशन तक रैली का आयोजन किया जिसमें सैकड़ों लोगों ने हिस्सा लिया।

पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तराखण्ड, हरियाणा समेत अन्य राज्यों में आयोजित इन देशव्यापी प्रदर्शनों में मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के समर्थन में अन्य जगहों पर भी धरने, रैलियाँ और संवाददाता सम्मेलनों का आयोजन किया गया।

''बेहतर भारत बनाने की मुहिम'' किसके लिए और कैसे?

आजकल दिल्ली की सड़कों पर 'वालंटियर फॉर बेटर इंडिया' के नाम से बड़ी-बड़ी होर्डिंग और पोस्टर लगे हुए हैं, जिसमें हिंसक प्रवृत्ति वाले लोगों के मदद करने की बातें लिखी हुई है। यानी की उन्हें ''शान्त'' और ''सुविचारी'' बनाने के अभियान की बात है। ये 'शुभ काम' जाने माने बाबा और 'आर्ट ऑफ लिविंग' के संस्थापक श्री श्री रविशंकर जी की 'असीम कृपा' से शुरू किया गया है।

ये वही 'महान बाबा' रविशंकर हैं। जिनकी नजर में सरकारों स्कूल में पढ़ने वाले आम ग़रीब और मज़दूर आबादी के बच्चे नक्सली और हिंसक है और दूसरी तरफ नरेन्द्र मोदी, वरुण गाँधी और तेजेन्द्र सिंह बग्घा जैसे लोग दयालु और ''शान्ति प्रिय'' लोग हैं। आइए, इस महान कर्म को थोड़ा विस्तार में जाँचते और समझते हैं।

3 फ़रवरी को दिल्ली के रामलीला मैदान में श्री श्री रविशंकर ने 'वॉलण्टियर फॉर बेटर इंडिया' नामक अभियान की शुरुआत की है, जिसके तहत हिंसक प्रवृत्ति वाले लोगों की मदद के लिए हेल्पलाइन नम्बर खोला गया है। 'वॉलण्टियर फ़ॉर बेटर इंडिया' का मतलब है बेहतर भारत बनाने का अभियान। हालाँकि, ये 'बेहतर भारत' किसके लिए होगा इसकी चर्चा हम आगे करेंगे, फिलहाल हम बाबा के हिंसा उन्मूलन की चिंता के बारे में बात करते हैं। जैसे कि आप जानते ही हैं कि 16 दिसम्बर की घटना के बाद सारे बाबा-संत से लेकर संघी भगवाधारी देश की संस्कृति को लेकर अजीबो-ग़रीब बयानबाजी कर रहे हैं; ऐसे में रविशंकर जी भी कहाँ पीछे रहने वाले थे। उनका मानना है कि देश के आम लोग, खासकर युवा बहुत हिंसक हो गए हैं, और उनके हिंसक होने की मुख्य वजह शराबखोरी, असहिष्णुता, तनाव आदि-आदि है। यही सारे अपराध की जड़ है।

लेकिन आम लोगों को शांति और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने वाले इन श्री-श्री 420 को तब क्या हो जाता है जब ये नरेन्द्र मोदी जैसे 'आतंक पुरुष' का गर्मजोशी से स्वागत करते हैं। ये वही मोदी हैं जिसने गुजरात-2002 में हज़ारों बेगुनाह मुस्लिम आबादी का सुनियोजित जनसंहार करवाया था, ये वही मोदी है जो गुजरात में पूँजीपतियों को विकास के नाम पर ना सिर्फ़ मज़दूरों और ग़रीब किसानों का शोषण करने बल्कि घोर दमन के लिये भी खुली लूट की छूट दे रहा है, ।

श्री श्री जी का अहिंसा प्रेम यहीं नहीं रुकता। हम भूले नहीं हैं कि 2009 चुनाव से पहले पीलीभीत में वरुण गाँधी के घोर साम्प्रदायिक भाषण पर सबसे पहले बधाई संदेश भेजने वालों में भी श्री श्री जी आगे थे। शायद बाबा ने उन्हें 'सहिष्णुता', 'प्रेम' और 'शान्ति' के उपदेश देने के लिए बधाई पत्र भेजा था! बाबा के 'हिंसा निवारण कार्यक्रम' की दास्तान यहीं पर समाप्त नहीं होती। श्री श्री रविशंकर ने ही आर.एस.एस. के स्कूल के एक कार्यक्रम के दौरान सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले सारे बच्चों को नक्सली बताया था और सरकार को ये स्कूल बन्द करने की सलाह तक दी थी। वैसे बाबा जिस संस्था के स्कूल में बैठकर प्रवचन दे रहे थे वही संस्था (यानी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) देश में अपने शिक्षा के नेटवर्क के ज़रिये सबसे ज़्यादा साम्प्रदायिकता का ज़हर बच्चों के दिमाग में घोलती है।

ये प्रवचन बाबा के असली चेहरे को साफ़ कर देता है कि बाबा की नज़र में आम आबादी के बच्चे जन्म से ही हिंसक होते हैं और उनकी शिक्षा के लिए अभी सरकार जो नाममात्र की राशि खर्च कर रही है उसे भी ख़त्म करने की बात करते हैं। जाहिर है, ये चाहते हैं कि आम मेहनतकश आबादी की सन्तान अशिक्षित ही रहे ताकि वह केवल मालिक के लिए हाड़माँस गला कर तिजोरी भरने की मशीन बने रहे।

ये चन्द घटनाएँ हिंसा के खिलाफ़ मुहिम चलाने वाले श्री-श्री रविशंकर की पोल खोल देती हैं कि ये बाबा खुद कितने गहरे ढंग से हिंसा और हिंसक व्यक्तियों से जुड़ा हुआ है। यही है श्री श्री रविशंकर का असली चेहरा, नंगा और जन विरोधी, फासिस्ट चेहरा।

'वालण्टियर फ़ॉर बेटर इंडिया' अभियान शुरू करने वाले इस बाबा का वर्ग-विश्लेषण भी कर लिया जाए। आखिर इतने बड़े-बड़े होर्डिंग,

(पेज 4 पर जारी)

शासक वर्ग द्वारा साम्प्रदायिक उन्माद, जातिगत वैमनस्य और क्षेत्रीय कट्टरवाद भड़काकर मज़दूर वर्ग को तोड़ने की तैयारी

(पेज 1 से आगे)

देशों का पूँजीपति वर्ग भी घबराया हुआ है जहाँ अभी ऐसे जनविद्रोह शुरू नहीं हुए हैं। वह जानता है कि जनता के पास अभी कोई क्रान्तिकारी विकल्प और क्रान्तिकारी पार्टी नहीं है जो उसे एकजुट और संगठित करके ऐसे विकल्प को लागू कर सकती हो। लेकिन इन सभी देशों के शासक वर्ग यह भी जानते हैं कि जनता बिना किसी क्रान्तिकारी विकल्प और संगठन के जो भी जनविद्रोह करती है, वह अगर क्रान्ति तक नहीं भी जाता है, तो वह पूँजीवादी व्यवस्था की चूलें हिला देता है। और इस बात से लुटेरे शासकों का डरना लाज़िमी है। नतीजतन, कोई ऐसा मुद्दा न मिलने पर, जिसके आधार पर 2014 के चुनावों में वोटों की फसल की सुचारू रूप से कटाई हो सके, भारतीय शासक वर्ग अपने आपसी अन्तरविरोधों के बावजूद, एक व्यापक सहमति के साथ अपने मूल एजेण्डे पर वापस लौट रहे हैं: यानी, बाँटो और राज करो!

सभी चुनावी पार्टियाँ 2014 के लोकसभा चुनावों के लिए अपने एजेण्डे तैयार करने में लग गयी हैं, और चूँकि उनका हर मुद्दा अब चुक गया है, इसलिए वे अपने मूल मुद्दों की तरफ लौट रही हैं। इसीलिए भाजपा एक बार फिर से राम मन्दिर, गोरक्षा और इस्लामी आतंकवाद के मुद्दे की तरफ लौट रही है, तो बसपा जैसी जाति-आधारित राजनीति करने वाली पार्टियाँ दलितवाद के एजेण्डे को एक बार फिर से पूरी ताक़त के साथ उछालने में लग गयी हैं; राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना और उद्धव ठाकरे की शिवसेना एक बार फिर से 'मराठी माणूस' का गाना गाने के लिए झाल-करताल लेकर उतर आयी हैं; असम से लेकर गुजरात तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक सभी धर्मों के कट्टरपन्थी और कठमुल्ले अपने-अपने झोलों में से अपना पुराना नुस्खा निकाल रहे हैं, चाहे वह ओवैसी हो, या फिर तोगड़िया। यह सब अभी पिछले कुछ महीनों से विशेष तौर पर शुरू हुआ है। और इसके कारण समझे जा सकते हैं।

6 फ़रवरी को भाजपा के नये अध्यक्ष राजनाथ सिंह (क्योंकि पुराने अध्यक्ष, यानी खाये-पिये-मुटियाए व्यापारी गडकरी का बोझ उठाना भाजपा के लिए मुश्किल हो गया था, इसलिए उन्हें अध्यक्ष पद से धक्का देकर लुढ़का दिया गया और वह अभी तक लुढ़क ही रहे हैं) कुम्भ मेले में पहुँचे और संगम में डुबकी लगायी। इस डुबकी के बाद राजनाथ सिंह ने कुम्भ मेले में जुटे श्रद्धालुओं के बीच घोषणा की कि भाजपा अयोध्या में राम मन्दिर बनाने के प्रति कटिबद्ध है, और वह इसे एक राजनीतिक मुद्दा मानती है, देश के गौरव का मुद्दा मानती है और वह यह मन्दिर बनाकर ही रहेगी। कुम्भ मेले में ही विश्व हिन्दू परिषद के अशोक सिंघल ने कहा कि देश के हिन्दू सरकार को चेतावनी दे रहे हैं कि छह महीने के भीतर सरकार ने अगर एक कानून पास करके अयोध्या में मन्दिर निर्माण की शुरुआत को आज्ञा नहीं दी तो एक बार फिर से हिन्दुओं का एक आन्दोलन शुरू किया जायेगा जो कि 1990 के कारसेवा आन्दोलन से भी बड़ा और भयंकर होगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, भाजपा और विहिप ने कुम्भ मेले के दौरान "सन्तों-महात्माओं" के केन्द्रीय मार्गदर्शक मण्डल की बैठक में हिस्सा लिया। और इस बैठक का मूल एजेण्डा ही यही था कि सभी हिन्दूवादी ताक़तों को एक बार फिर से साथ लाकर देश में एक बार फिर से साम्प्रदायिक फासीवाद की लहर कैसे उठायी जाय। एक तरफ ज़मीनी स्तर पर भाजपा हिन्दुत्व के एजेण्डे को फिर से ज़िन्दा करने में लगी हुई है, वहीं दूसरी तरफ देश भर के मीडिया में प्रधानमन्त्री पद के दावेदार के तौर पर गुजरात के कसाई नरेन्द्र मोदी का नाम उछाला जा रहा है। भाजपा के नेतृत्व में अपने नाराज़ नेताओं को मनाने के लिए मोदी ने अलग-अलग दरवाज़ों के चक्कर काटने शुरू कर दिये हैं। भाजपा के काडरों में इस बात की ज़बर्दस्त माँग है नरेन्द्र मोदी को अगले चुनावों को के लिए प्रधानमन्त्री पद का दावेदार घोषित किया जाय। असल में, भाजपा के निचले काडर भी पिछले 10 वर्षों से जारी भाजपा की दुर्गत से ऊब गये हैं। पूरे देश में भाजपा कांग्रेस को पटखनी देने के लिए जो भी जुगत भिड़ाती है, वह अन्त में उसके ऊपर ही कहर बरपा कर देती है। भ्रष्टाचार के मुद्दे पर ज़्यादा उछल-कूद मचायी तो व्यापारी गडकरी की बलि चढ़ गयी। सरकारी सौदों और ख़रीद में घोटालों की बात की तो उसके ही कई मन्त्री चपेट में आ गये! इसलिए अब फासीवादी मानसिकता वाले भाजपा काडरों (जिसमें कि छोटे व्यापारियों, व्यवसायियों और उनके लुच्चे-लम्पट लौण्डों की जमात सबसे प्रमुख है) में यह राय बनने लगी है, कि बाकी सारे मुद्दे बेकार हैं और वास्तव में एक ही मुद्दे को लेकर देश में ध्रुवीकरण कराया जाना चाहिए – मुसलमान-विरोध और राम मन्दिर। ज़मीनी धरातल पर भाजपाइयों ने संघ परिवार के बाकी संगठनों के साथ मिलकर ऐसे प्रयास शुरू भी कर दिये हैं, और ऐसे प्रयोग का केन्द्र इस समय उत्तर प्रदेश बन रहा है, क्योंकि भाजपा को यह बात समझ में आ चुकी है कि उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक फासीवादी लहर भड़काये बग़ैर केन्द्र की सत्ता में आने का सपना सपना ही रह जायेगी। यही कारण है कि पिछले दो से तीन वर्षों में उत्तर प्रदेश के कई शहरों में साम्प्रदायिक दंगे भड़काने की भरपूर कोशिशें की गयीं, जैसे कि बरेली, फैज़ाबाद, गोरखपुर आदि। ऐसे ही प्रयास राजस्थान और मध्यप्रदेश में भी जारी रहे। भाजपा पर्याप्त संकेत दे चुकी है कि वह वापस अपने हिन्दुत्ववादी एजेण्डे पर लौट रही है और वह आने वाले चुनावों में एक बार फिर से राम मन्दिर का मसला उछालकर और देश को साम्प्रदायिक दंगों की आग में झोंककर अपनी चुनावी गोट लाल करने की फ़िराक में है।

भाजपा नेतृत्व सीधे तौर पर कहीं भी मोदी अपना प्रधानमन्त्री पद का उम्मीदवार नहीं बता रहा है लेकिन अनौपचारिक तौर पर हिन्दुओं के वोटों के अपने पक्ष में ध्रुवीकरण के लिए मोदी के नाम को हर चीज़ में आगे कर रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय के एक सम्मानित कॉलेज में मोदी फ़रवरी में "विकास" के विषय पर व्याख्यान देकर आया। मोदी को बीच में गोण्डा विधानसभा क्षेत्र से भाजपा का उम्मीदवार बनाने की बात भी सामने आयी। बिहार प्रदेश की भाजपा इकाई के अध्यक्ष ने तो अपनी तरफ से मोदी को प्रधानमन्त्री पद का उम्मीदवार एक प्रकार से घोषित ही कर दिया। लेकिन यही बात भाजपा का राष्ट्रीय नेतृत्व खुलकर नहीं बोल रहा है क्योंकि उसे यह आत्मविश्वास नहीं है कि वह बिना अन्य सहयोगियों के, जो कि राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन में हैं, और विशेष तौर पर जनता दल (यूनाईटेड) के बिना बहुमत हासिल कर सकता है। लेकिन उसने अपने इस विकल्प को खुला रखा है कि अगर 2014 के लोकसभा के चुनावों के पहले वह साम्प्रदायिक फासीवादी की लहर उठाने में कामयाब होती है, तो वह अपनी शर्तें राजग के अन्य घटकों के सामने रख सकता है। और राजग के तमाम घटकों के तौर पर जो क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियाँ यह तालमेल का खेल खेल रही हैं, उनके सामने भी उस सूरत में ज़्यादा विकल्प नहीं बचेंगे। उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर अगर सत्ता में भागीदारी चाहिए तो वे या तो भाजपा की पूँछ पकड़ने या फिर कांग्रेस की मालिश करने को मजबूर हैं। तीसरे मोर्चे जैसी किसी ताक़त का राष्ट्रीय राजनीति में उभरना अभी सम्भव नहीं दिख रहा है। ऐसे में, गठबन्धन के कुछ नये समीकरण बन सकते हैं। लेकिन एक बात तय है कि भाजपा को यह समझ में आ गया है कि हमेशा की तरह इस संकट के दौरान भी उसकी आख़िरी लाइफलाइन हिन्दुत्व की लाइन है और वह उस पर चलने की पूरी तैयारी कर चुकी है।

भाजपा के हिन्दुत्ववादी एजेण्डे की तरफ खिसकने की प्रक्रिया और उसकी सफलता की सम्भावना बढ़ाने की प्रक्रिया को हमेशा की तरह न सिर्फ़ हिन्दू कट्टरपन्थी ताक़तें बल दे रही हैं, बल्कि मुस्लिम कट्टरपन्थी ताक़तें भी इसमें पूरी मदद कर रही हैं। क्योंकि वास्तव में जब भी साम्प्रदायिक फासीवाद पनपता है, तो उससे केवल बहुसंख्यवादी हिन्दुत्व फासीवाद को ही नहीं, बल्कि अल्पसंख्यवादी इस्लामी कट्टरपन्थी फासीवाद को भी खाद-पानी मिलता है। पूँजीवादी व्यवस्था का संकट बढ़ने से एक ख़तरा इस्लामी कट्टरपन्थियों के सामने भी पैदा हो गया था। ये सारे कठमुल्ले जानते हैं कि अगर व्यवस्थागत संकट बढ़ेगा तो जनता वर्गीय गोलबन्दी की तरफ आगे बढ़ सकती है। अगर हिन्दू और मुसलमान ग़रीब जनता अपने आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर एकजुट और गोलबन्द होने लगे तो हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों के साथ-साथ मुस्लिम कट्टरपन्थियों की दुकानें भी तो बन्द हो जायेंगी। इसलिए इसी समय सारे मुस्लिम कट्टरपन्थी भी जाग उठे हैं। ओवैसी जैसे लोग बयान दे रहे हैं कि अगर अल्पसंख्यक मुसलमानों को एक घण्टे के लिए भी खुला हाथ दे दिया गया और अगर फौज और पुलिस बीच में न आयें, तो वे समूची हिन्दू आबादी का सफ़ाया कर सकते हैं। इसका जवाब देने में हिन्दू कट्टरपन्थी प्रवीण तोगड़िया ने देर नहीं लगायी और कहा कि अगर वह सत्ता में आया तो मुसलमानों के वोट देने का अधिकार छीन लिया जायेगा और मुसलमानों का हिन्दुस्तान से पूरा सफ़ाया ही एकमात्र और अन्तिम समाधान है। जाहिर है, न तो ओवैसी वह कर सकता है जो वह कह रहा है और न ही तोगड़िया वह कर पायेगा जो वह कह रहा है। और यह बात ओवैसी और तोगड़िया जैसे लोग अच्छी तरह जानते भी हैं। फिर वे ऐसे बयान क्यों दे रहे हैं? ताकि मज़दूरों, आम मेहनतकश जनता और विशेष तौर पर जो एक बड़ी टटपुँजिया वर्गों की आबादी इस देश में है, उसे धार्मिक और साम्प्रदायिक लाइन पर बाँटा जा सके। फिर से दंगे भड़कें, फिर लाशों से सड़कें पट जायें, फिर से महिलाओं के साथ बलात्कार हो, फिर से मेहनतकशों का क़त्ल और विस्थापन हो! और एक बार फिर से 'ख़ून की बारिश से वोटों की फसल लहलहाए।' हम मज़दूर साथियों और आम मेहनतकशों से पूछते हैं कि ऐसे भड़काऊ बयानों पर अपने ख़ून में उबाल लाने से पहले ख़ुद से पूछिये: क्या ऐसे दंगों में कभी तोगड़िया, ओवैसी, राज ठाकरे, आडवाणी या मोदी जैसे लोग मरते हैं? क्या कभी उनके घर की औरतों के साथ बलात्कार, उनके घर के बच्चों का क़त्ल होता है? नहीं साथियो! इसमें हम मरते हैं, हमारे लोगों की बेनाम लाशें सड़कों पर पड़ी धू-धू जलतीं हैं। सारे के सारे धार्मिक कट्टरपन्थी तो भड़काऊ बयान देकर अपनी ज़ेड श्रेणी की सुरक्षा, पुलिसवालों और गाड़ियों के रेले के साथ अपने महलों में वापस लौट जाते हैं! और हम? हम उनके झाँसे में आकर अपने ही वर्ग भाइयों से लड़ते हैं! और इसका फ़ायदा किसे मिलता है? इसका फ़ायदा मिलता है इस देश की सत्ता पर विराजमान हिन्दू और मुसलमान शासकों को, मन्त्रियों-नेताओं को, व्यापारियों-व्यवसायियों को, तरह-तरह के दलालों को, खाते-पीते ठेकेदारों को और पूँजीपति घरानों को! इसलिए हिन्दू और मुसलमान आम मेहनतकश आबादी को किसी भी कीमत पर इन प्रतिक्रियावादी फासीवादी ताक़तों के झाँसे में नहीं आना चाहिए! कम-से-कम अब तो नहीं! और कभी नहीं! चाहे वे आपको राम मन्दिर का वास्ता दें या फिर क़ुरान की कसम खिलायें!

एक तरफ जहाँ भाजपा जैसी साम्प्रदायिक फासीवादी ताक़तें एक बार फिर से धार्मिक कट्टरपन्थी फासीवादी उन्माद भड़काकर, दंगे फैलाकर, और जनता की लाशों पर रोटी सेंकते हुए सत्ता में आने की तैयारी में लगी हुई हैं, वहीं कांग्रेस ने भी अपने पत्ते खोलने शुरू कर दिये हैं। एक तो उसने आनन-फानन में संसद हमले में गिरफ़्तार अफज़ल गुरू को फाँसी देकर अपने आपको भाजपा से बड़ा "देशभक्त" घोषित कर दिया, और वहीं दूसरी तरफ मुसलमानों को लुभाने के लिए भी तरह-तरह की बयानबाज़ी शुरू कर दी। कांग्रेस हमेशा से ही जो खेल खेलती आ रही थी, वही खेल उसने अभी भी जारी रखा है। एक ओर तो भाजपा के हिन्दुत्ववादी मुद्दे पर आक्रामक होते ही वह स्वयं भी एक नरम हिन्दू कार्ड खेलना शुरू कर देती है, और दूसरी तरफ ज़मीनी स्तर पर मुसलमानों को भरमाने के उपक्रम भी शुरू कर देती है। सबसे अच्छी नीति उसके लिए यही है कि सेक्युलरिज़्म की बातें करते हुए, जब ज़रूरत हो तो हिन्दुओं को रिझाने के लिए कुछ कदम उठा दो, और जब ज़रूरत पड़े तो अपने आपको साम्प्रदायिक फासीवाद का एकमात्र विकल्प साबित कर दो। और अभी तक कांग्रेस की यह रणनीति काम भी आयी है। इस रणनीति को कांग्रेस ने दो और रणनीतियों के साथ मिलाया है। एक तरफ तो कांग्रेस ने अब राहुल गाँधी को स्पष्ट रूप से अपने प्रधानमन्त्री पद के उम्मीदवार के तौर आगे करना शुरू कर दिया है, तो वहीं दूसरी तरफ उसने सोनिया गाँधी की राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की तरफ से कुछ लोकलुभावन नीतियों की बात करनी भी शुरू कर दी है। लेकिन कांग्रेस ने अपने सारे पत्ते खोलने की बेवक़ूफ़ी नहीं की है। अभी लोकसभा चुनावों में एक वर्ष बाकी है और कांग्रेस जानती है कि इस एक वर्ष में वह फिर से समीकरण अपने पक्ष में झुका सकती है। इसलिए एक ओर उसने राहुल गाँधी को राष्ट्रीय सचिव बनाकर मध्यवर्गीय शहरी युवाओं के वोट को खींचने और कांग्रेस के अन्दरूनी संगठन को मज़बूत करने का काम किया है, तो वहीं दूसरी ओर उसने मनरेगा योजना में रोज़गार गारण्टी के दिनों को 100 से बढ़ाकर 200 दिन करने की बात भी कर दी है। इसी योजना का हल्ला मचाकर पहली बार संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार सत्ता में आयी थी, और अब उसी योजना का नये तरीक़े से हल्ला मचाकर फिर से सत्ता में आना चाहती है। छह-सात वर्षों में ग्रामीण सर्वहारा वर्ग इस बात को समझने लगा है कि मनरेगा की योजना का असली मकसद क्या है? इसका असली मकसद है गाँवों से शहरों में हो रहे मज़दूर पलायन को रोकना, या कम-से-कम उसकी रफ़्तार को घटाना क्योंकि शहरी मज़दूरों के असन्तोष से शासक वर्ग बुरी तरह से भयभीत रहता है। और ऐसा करते हुए ग्रामीण मज़दूरों को गाँव में कोई ऐसा रोज़गार देना सरकार का मकसद नहीं है, जो उन्हें इज़्ज़त-आसूदगी की ज़िन्दगी दे। इसका असली मकसद है गाँव के मज़दूरों को भुखमरी के स्तर पर ज़िन्दा रखो, उससे बेहतर का सपना दिखाओ और अन्ततः उनका शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन रोक दो। हालाँकि इस पूरी योजना में भ्रष्टाचार के कारण सरकार अपने इस लक्ष्य में उतना कामयाब नहीं हो पा रही है, जितना कि वह होना चाहती है, लेकिन फिर भी इसके प्रचार से वोटों के बँटवारे पर तो असर पड़ता ही है। और संप्रग सरकार निश्चित तौर पर चुनाव के ठीक पहले इस योजना के तहत 100 की बजाय 200 दिनों रोज़गार की गारण्टी करने का प्रावधान कर ही देगी। वहीं दूसरी ओर कांग्रेस को हिन्दुत्ववादी एजेण्डे को भाजपा द्वारा फिर से उछाले जाने से कोई विशेष नुकसान नहीं है क्योंकि कांग्रेस का नेतृत्व जानता है कि इसके ज़रिये जिन-जिन प्रदेशों में कांग्रेस का मुसलमान वोट बैंक

(पेज 7 पर जारी)

शासक वर्ग द्वारा साम्प्रदायिक उन्माद, जातिगत वैमनस्य और क्षेत्रीय कट्टरवाद भड़काकर मज़दूर वर्ग को तोड़ने की तैयारी

(पेज 6 से आगे)

खिसका है और क्षेत्रीय पार्टियों की तरफ गया है, वह वापस उसकी तरफ आ सकता है क्योंकि लोकसभा चुनावों और विधानसभा चुनावों के बीच फ़र्क है। मिसाल के तौर पर, उत्तर प्रदेश में ही मुसलमानों की अच्छी-ख़ासी आबादी को विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को वोट डालने की कोई आवश्यकता नहीं है, और वह सपा को चुन सकती है। लेकिन केन्द्र की बात करें तो मुसलमानों की यह आबादी जानती है कि सपा किसी सूरत में केन्द्र में सरकार नहीं बना सकती है, और भाजपा को केन्द्र में आने से रोकने के लिए कांग्रेस को वोट करना ज़्यादा बेहतर होगा। इसलिए भाजपा अगर हिन्दुत्व के मुद्दे पर खुलकर वापस लौटती है, तो कांग्रेस इसका भी लाभ उठाने की कोशिश करेगी। कुल मिलाकर साम्प्रदायिक फासीवाद और दंगों का फ़ायदा अगर भाजपा को मिलेगा तो कांग्रेस को भी मिलेगा।

लेकिन इसका फ़ायदा न सिर्फ़ कांग्रेस को मिलेगा बल्कि संसदीय वामपन्थियों को भी मिलेगा। माकपा, भाकपा और भाकपा (माले) के पास आजकल वैसे भी कोई ख़ास मुद्दा नहीं है और उन्हें ऐसे किसी मुद्दे की ज़रूरत है जो कि राष्ट्रीय राजनीति में उनके सितारे को कुछ बुलन्द करे। हाल के जितने भी विधानसभा चुनाव हुए हैं, उसमें त्रिपुरा (जिसके नतीजे अभी सामने नहीं आये हैं, लेकिन ज़्यादा सम्भावना वामपन्थी गठबन्धन की सरकार के बनने की ही है) के अपवाद को छोड़ दें तो हर जगह संसदीय वामपन्थी ताक़तें पिट गयी हैं। पिछले लोकसभा चुनावों में भी संसदीय वामपन्थ का प्रदर्शन पहले के मुकाबले ख़राब था। लेकिन जब भी आर्थिक संकट और राजनीतिक संकट गहराता है तो संशोधनवादियों की प्रासंगिकता फिर से पैदा हो जाती है। इसका कारण यह है कि वे दूसरों के मुकाबले राष्ट्रीय पूँजीवादी राजनीति में कम भ्रष्ट नज़र आते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि राष्ट्रीय स्तर पर इन बेचारों की कभी सरकार नहीं बनती इसलिए भ्रष्टाचार करने के ज़्यादा मौके मिलते ही नहीं हैं। लेकिन पश्चिम बंगाल और केरल में जहाँ इनकी सरकारें लम्बे समय तक रहीं वहाँ भ्रष्टाचार के आरोप इन पर भी लगे हैं। किसी साम्प्रदायिक फासीवादी उभार का फ़ायदा इन्हें भी मिलता है, हालाँकि माकपा के भीतर एक हिस्सा ख़ुद ऐसा है जो कि मुसलमान-विरोधी है, जैसा कि नन्दीग्राम में लोगों के क़त्लेआम के दौरान सामने भी आया था। लेकिन राष्ट्रीय राजनीति में इन संसदीय वामपन्थियों ने अपनी छवि एक साम्प्रदायिकता-विरोधी ताक़त की बना रखी है। लेकिन आप करीब से नज़र डालें तो साफ़ हो जाता है कि इनकी धर्मनिरपेक्षता और नेहरू की धर्मनिरपेक्षता में ज़्यादा अन्तर नहीं है : यानी यह 'मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना' वाली धर्मनिरपेक्षता है, जो कहीं भी साम्प्रदायिक फासीवादियों के ख़िलाफ़ सड़क पर नहीं लड़ती, बस आपसी सद्भाव के उपदेश और भाषणबाज़ी करती है। जब गुजरात के दंगे हुए थे, तब भी अगर माकपा चाहती तो अपनी ट्रेड यूनियन की ताक़त का इस्तेमाल दंगों पर फासीवादियों का डटकर मुकाबला करने और मुसलमान जनता की हिफ़ाज़त करने के लिए कर सकती थी। ऐसा दुनिया भर में कम्युनिस्टों ने फासीवादियों के ख़िलाफ़ किया है, और जो भी सच्ची कम्युनिस्ट ताक़त होगी, वह ऐसा ही करेगी। लेकिन भाकपा, माकपा और भाकपा (माले) सारी लड़ाई संसद की बयानबाज़ियों के ज़रिये लड़ते हैं, और जहाँ वे संसद के बाहर कुछ करते भी हैं, तो उसका मकसद भी वोट पाना ही होता है। ऐसे में, साम्प्रदायिक दंगों के भड़कने और धर्म के आधार पर जनता के ध्रुवीकरण का फ़ायदा इन संसदीय वामपन्थियों को भी मिलना ही है।

और क्षेत्रीय पूँजीवादी दल तो इस समय पूरे देश की पूँजीवादी राजनीति में सबसे घटिया, सिद्धान्तहीन, अवसरवादी और नीचता के धरातल पर खड़े हैं। चाहे वह क्षेत्रवादी राजनीति करने वाले हों (राज ठाकरे, उद्धव ठाकरे), दलित राजनीति करने वाले हों (अठावले, मायावती) या फिर अन्य कोई मुद्दा उछालने वाले क्षेत्रीय दल हों। यह कभी भी किसी भी गोद में बैठने को तैयार हैं, जो कि इन्हें सत्ता में हिस्सेदारी देने का वायदा करे। इन क्षेत्रीय दलों की बात करना ही बेकार है और यह जनता की चेतना को सबसे ज़्यादा कुन्द करने का काम करते हैं। कुछ ऐसे दल भी हैं जो राष्ट्रीय बनने की तमन्ना पाले हुए हैं, लेकिन उनके राष्ट्रीय दल बनने की बहुत ज़्यादा सम्भावनाएँ नहीं हैं। इन सभी दलों को देश भर में जनता के धर्म, जाति और क्षेत्र के नाम पर बँटने का फ़ायदा ही मिलेगा। और इस समय में समूचे पूँजीपति वर्ग की यही ज़रूरत भी है।

आज पूँजीवादी राजनीति के सामने जो संकट खड़ा है, वह दरअसल समूची पूँजीवादी व्यवस्था के संकट की ही एक अभिव्यक्ति है। फिलहाली तौर पर, संसद और विधानसभा में बैठने वाले पूँजी के दलालों के पास कोई मुद्दा नहीं रह गया है; जनता में असन्तोष बढ़ रहा है; दुनिया के कई अन्य देशों में जनविद्रोहों के बाद शासकों की नियति भारत के पूँजीवादी शासकों के भी सामने है; इससे पहले कि जनता का असन्तोष किसी विद्रोह की दिशा में आगे बढ़े, उनको धार्मिक, जातिगत, क्षेत्रगत या भाषागत तौर पर बाँट दिया जाना ज़रूरी है। और इसीलिए अचानक आरक्षण का मुद्दा, राम-मन्दिर का मुद्दा, मुसलमानों की स्थिति का मुद्दा फिर से राष्ट्रीय पूँजीवादी राजनीति में गर्माया जा रहा है। तेलंगाना से लेकर बोडोलैण्ड और गोरखालैण्ड के मसले को भी केन्द्र में बैठे पूँजीवादी घाघ हवा दे रहे हैं। जो संकट आज देश के सामने खड़ा है, उसके समक्ष दोनों ही सम्भावनाएँ देश के सामने मौजूद हैं। एक सम्भावना तो यह है कि सभी प्रतिक्रियावादी ताक़तें देश की आम मेहनतकश जनता को बाँटने और अपने संकट को हज़ारों बेगुनाहों की बलि देकर टालने की साज़िश में कामयाब हो जाये। और दूसरी सम्भावना यह है कि हम इस साज़िश के ख़िलाफ़ अभी से आवाज़ बुलन्द करें, अपने आपको जगायें, अपने आपको गोलबन्द और संगठित करें। देश का मज़दूर वर्ग ही वह वर्ग है जो कि फासीवाद के उभार का मुकाबला कर सकता है, बशर्ते कि वह ख़ुद अपने आपको इन धार्मिक कट्टरपन्थियों के भरम से मुक्त करे और अपने आपको वर्ग चेतना के आधार पर संगठित करे। या तो हम इस रास्ते पर आगे बढ़ेंगे, या फिर हम एक बार फिर से चूक जाएँगे, एक बार फिर से हज़ारों की तादाद में अपने लोगों को खोएँगे और एक बार फिर से प्रतिक्रियावादी ताक़तें हमें इतिहास के मंच पर प्रवेश करने से पहले ही फिर से कई वर्षों के लिए उठाकर बाहर फेंक देंगी; एक बार फिर से पराजय और निराशा का दौर शुरू हो जायेगा। इस नियति से बचने का रास्ता यही है कि कांग्रेस, भाजपा, सपा, बसपा, जद (यू), राजद, माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) आदि समेत सभी चुनावी मदारियों के भरम तोड़कर हम अपना इंक़लाबी विकल्प खड़ा करें, अपनी इंक़लाबी पार्टी खड़ी करें और एक इंक़लाब के ज़रिये मेहनतकश का लोकस्वराज्य खड़ा करने के लिए आगे बढ़ें!

महाकुम्भ में सन्तों की घृणित मायालीला, विहिप की धर्मसंसद ...

(पेज 13 से आगे)

कुकृत्यों से ही की जा सकती है। इस विकास पुरुष के गुजरात की विकास दर 11 प्रतिशत होने की रट लगाने के बावजूद हक़ीक़त का आँकड़ा 5 प्रतिशत से अधिक का नहीं है। एक तरफ टाटा जैसे उद्योगपतियों को कम्पनी लगाने के लिए औने-पौने दाम में ज़मीन, और रियायती दर पर बिजली मुहैया करायी जाती है। दूसरी तरफ 31 प्रतिशत से अधिक आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे गुजर कर रही है। गुजरात उन राज्यों में से एक है जहाँ मज़दूरी की दर सबसे कम है। 21 प्रतिशत लोग कुपोषित हैं, और 15-49 वर्ष की उम्र की औरतों में 59.20 प्रतिशत औरतें खून की कमी का शिकार हैं। इन्हीं मोदी की तमाम महामण्डलेश्वर व शंकराचार्य जय-जयकार कर रहे हैं, तो मेहनतकश अवाम को इनकी मंशा और इनका प्रतिक्रियावादी चरित्र समझ जाना चाहिए।

विहिप ने गाय माता को बचाने का संकल्प लिया है। विहिप से पूछा जाना चाहिए कि गाय माता से जन्मे बछड़े भ्राता का दूध छीनकर गणेश की मूर्ति को पिलाने वाले या गंगा में पूजा-अर्चन करते समय दूध बहाने वाले साधुओं पर वह क्यों नहीं पिल पड़ती। क्योंकि इससे पता नहीं कितने बछड़ा भ्राताओं को भूखे ही रहना पड़ता होगा। या फिर वैदिक ग्रन्थों को जलाना चाहिए क्योंकि उसमें गाय का मांस ब्राह्मणों द्वारा खाने का उल्लेख है। फिर सारी सभ्यता को भी तहस-नहस कर देने की तैयारी करनी चाहिए क्योंकि गाय माता से जन्मे बछड़े भ्राता को खेतों में जोतकर ही कृषि व्यवस्था से आधुनिक समय तक की यात्रा तय हुई। 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' में प्रेमचन्द ने ऐसों पर लिखा है कि – हिन्दुओं में भी ऐसी जातियाँ हैं जो गाय का मांस खाती हैं यहाँ तक कि मृतक का मांस भी नहीं छोड़तीं! संसार में हिन्दू ही एक जाति है जो गोमांस को अखाद्य या अपवित्र समझती है, तो क्या इसलिए हिन्दुओं को समस्त विश्व से धर्म-संग्राम छेड़ देना चाहिए।

जानवरों की इतनी फिक्र करने वाले इन कुचक्रियों को अनाज होने के बावजूद लाखों मरते इन्सानों के बच्चे नहीं दिखते। मन्दिर के लिए देश की जनता को साम्प्रदायिक आग में झोंकने की तैयारी करते इन कट्टरपन्थियों को अशिक्षित जनता व चिकित्सा के अभाव में मरते बच्चे नहीं दिखते। भारत के पंजीयक एवं जनगणना विभाग द्वारा जारी आँकड़ों के मुताबिक देश में क़रीब 30 लाख पूजास्थल हैं जबकि शैक्षणिक संस्थान व अस्पतालों की संख्या कुल मिलाकर 27.89 लाख। मन्दिर बनने से मेहनतकश जनता को क्या मिलेगा? मन्दिर बन जायेगा तो यही होगा कि उसमें ग़रीबों का पैसा सोना के रूप में गैर-उपयोगी ढंग से इकट्ठा होगा। आँकड़े बताते हैं कि भारत के मन्दिरों में भारतीय रिज़र्व बैंक से भी ज़्यादा सोना है। बरबस कबीर याद आ जाते हैं – पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजू पहार, ताकी से चाकी भली जो पीस खाय संसार। गंगा की चिन्ता में पतले होने वाले इन गंगा प्रेमियों को उस समय गंगा की याद नहीं आयी जब भाजपा नेताओं के स्टोनक्रशर्स द्वारा गंगा को नुकसान पहुँचवाने के ख़िलाफ़ उत्तराखण्ड में स्वामी निगमानन्द की अनशन करते-करते रहस्यमय तरीक़े से मौत हो गयी।

चलते-चलते, इन धर्म संस्कृति के झण्डाबरदारों से एक चीज़ और पूछ लिया जाये। आप नग्नता के बहुत विरोधी हैं, पर गंगा में हज़ारों नंगे घूम रहे हैं और उनको आप पूज रहे हैं। हैरत की बात है कि दुर्गा वाहिनी को भी यह सब नज़र नहीं आ रहा है। आस्था भी कितनी अन्धी हो सकती है!

एक बात हम आपके सामने और रखना चाहते हैं। अभी आँकड़ा आया था कि देश में 2008-09 में (दो साल के अन्दर) 1 लाख 70 हज़ार बच्चे ग़ायब हुए हैं। इन बाबाओं के मठों व आश्रमों पर बहुत सारे बच्चे देखे गये हैं। उनकी जाँच होनी चाहिए। दूसरे, बच्चों को बचपन में बाल संन्यासी बनाने के लिए सम्बन्धित मठाधीशों पर मुकदमा दर्ज होना चाहिए क्योंकि इस उम्र में बच्चे कोई स्वतन्त्र निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होते। इस उम्र में उनके घरवाले भी उनसे यह कराने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं।

अब कुछ वामपन्थी बुद्धिजीवियों के रुदन पर नजर दौड़ा ली जाये। ये बुद्धिजीवी बड़े शिक़ायती अन्दाज़ में कहते हैं कि बताइये इतनी भीड़ कम्युनिस्टों के कार्यक्रम में क्यों नहीं होती। पहली बात तो इन कूपमण्डूकों को यह समझनी चाहिए कि इतनी भीड़ जब इंक़लाबी राजनीतिक आवाहन पर जुटने लगेगी, तो क्रान्ति आसन्न होगी या हो चुकी रहेगी। इससे भला कौन इन्कार कर सकता है कि इतिहास के गतिरोध के दिनों में व्यापक जनता भी भाग्यवाद और धर्म की जकड़बन्दी में जकड़ी होती है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि धर्म के उद्गम का इतिहास हज़ारों वर्ष पुराना है और उसका सामाजिक वस्तुगत आधार पूँजीवाद की माल-उत्पादन की प्रणाली में भी मौजूद है। इन बुद्धिजीवियों के इस पराजयबोध पर भगत सिंह की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है – ''जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो वे किसी भी तरह की तब्दीली से हिचकिचाते हैं और ऐसे में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ उन्हें ग़लत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती है। इस स्थिति को दूर करने के लिए क्रान्ति की स्पिरिट पैदा करने की ज़रूरत होती है।'' लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'धर्म के बारे में' में लिखा है कि मेहनतकश जनता को एक अदृश्य दैवीय सत्ता में विश्वास होता है क्योंकि माल-उत्पादन पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था की अदृश्य ताक़तें मेहनतकश अवाम को निरन्तर तबाह करती रहती हैं और इन अदृश्य ताक़तों को मेहनतकश अवाम समझ नहीं पाती। मेहनतकश अवाम यह नहीं समझ पाता है कि उसके बच्चों को असमय कौन मार देता है, हाड़-तोड़ मेहनत के बाद अपनी आधी उम्र को गँवा देने का नसीब उसे ही क्यों मिला? वह कैसे अपनी खुशियाँ प्राप्त करे? परन्तु यहीं से कम्युनिस्टों का काम शुरू होता है। इन बुद्धिजीवियों को भी चाहिए कि अपने पराजयबोध से छुटकारा पाकर इन अदृश्य ताक़तों को मेहनतकश अवाम के सामने मूर्तिमान कर दें। इन ताक़तों के मूल स्रोत, यानी माल-उत्पादन पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था को उनके सामने खड़ा कर दें। उसे बतायें कि सारी भौतिक सम्पदा उसके मेहनती हाथों से ही पैदा होती है। उन्हें ऐसी व्यवस्था का विकल्प समझायें जबकि मेहनतकश अवाम ख़ुद अपने भविष्य की नियन्ता बन सकेगी। तब मेहनतकश अवाम की शक्ति इस व्यवस्था को तबाह करने वाली शक्ति में बदल जायेगी।

अन्त में, हम यह कहना चाहते हैं कि मज़दूर वर्ग को मुक्ति के लिए किसी पण्डे-पुरोहित-शंकराचार्य की ज़रूरत नहीं है। वह ख़ुद दुनिया का मुक्तिदाता है। पिछली शताब्दी में उसने ऐसा किया था और इस सदी में भी वह निर्णायक रूप से ऐसा ही करेगा।

● प्रसेन

144वीं जन्मतिथि (26 फ़रवरी, 1869) और 74वीं पुण्यतिथि (27 फ़रवरी, 1939) के अवसर पर

रूसी क्रान्ति की सच्ची सेनानी नादेज़्दा क्रुप्स्काया को श्रद्धांजलि

नादेज़्दा क्रुप्स्काया रूस की महान अक्टूबर क्रान्ति के नेता लेनिन की जीवनसाथी ही नहीं, बल्कि सच्चे अर्थों में बोल्शेविक थीं। वह 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के अग्रणी सेनानियों में तभी शामिल हो गयी थीं जब लेनिन और उनकी पीढ़ी के युवा क्रान्तिकारी ग्रुप्स बनाकर मज़दूरों और छात्रों के बीच काम करते थे।

वे उसी दौरान लेनिन के सम्पर्क में आयीं और 1896 में लेनिन की गिरफ़्तारी के कुछ ही समय बाद उन्हें भी गिरफ़्तार कर लिया गया। बाद में लेनिन को साइबेरिया भेजने की सजा सुनायी गयी तो उन्होंने पत्र भेजकर क्रुप्स्काया से शादी का प्रस्ताव रखा। ज़ारकालीन नियम के तहत लेनिन की पत्नी बन जाने के बाद क्रुप्स्काया को भी साइबेरिया भेज दिया गया।

रूस की 1905 की असफल क्रान्ति के बाद ज़ार की पुलिस के दमन से बचने के लिए लेनिन विदेश गये, तो वे भी उनके साथ गयीं। वहाँ नेतृत्वकारी साथियों के साथ पार्टी निर्माण और क्रान्ति की योजनाओं में शिरकत करने के साथ ही क्रुप्स्काया यूरोप के स्त्री मज़दूर आन्दोलन में भी सक्रिय रहीं, और रोज़ा लग्ज़म्बर्ग, क्लारा जेटकिन, अलेक्सान्द्रा कोलन्ताई, इमेसा आर्मां जैसे अग्रणी नेताओं के साथ रूस ही नहीं बल्कि पूरे यूरोप के स्त्री आन्दोलन के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया।

महान अक्टूबर क्रान्ति के बाद के कठिन दिनों में हर राजनीतिक संघर्ष में क्रुप्स्काया ने सही अवस्थिति लेकर संघर्ष में भागीदारी की। कृषि के सामूहिकीकरण के सवाल पर त्रात्स्की, बुख़ारिन, जिनेवियेव, कामेनेव आदि की ग़लत लाइन का विरोध किया और स्तालिन की नीतियों का समर्थन किया।

इस दौर में अनातोली लूनाचार्स्की शिक्षा विभाग के कमिसार रहे, और क्रुप्स्काया शिक्षा विभाग की उप कमिसार रहीं। नादेज़्दा ने इस विषय पर महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक योगदान दिया कि समाजवादी समाज में प्रारम्भिक शिक्षा कैसी होनी चाहिए और पॉलीटेक्निकल शिक्षा का स्वरूप क्या होना चाहिए! स्त्री मुक्ति के प्रश्न पर वह लगातार सक्रिय रहीं और लेनिनवादी नीतियों को लागू करने की पक्षधर रहीं।

लेनिन और क्रान्तिकारी दिनों के बारे में जितने भी संस्मरण लिखे गये उनमें से नादेज़्दा क्रुप्स्काया के संस्मरणों में हमें बोल्शेविक क्रान्तिकारियों के इस्पाती चरित्र के निर्माण का सबसे सजीव ब्यौरा मिलता है।

क्रुप्स्काया की 144वीं जन्मतिथि 26 फ़रवरी, 1869 और 74वीं पुण्यतिथि 27 फ़रवरी, 1939 के अवसर पर श्रद्धांजलि देते हुए, हम 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए उन्हीं की लेखनी से कुछ अंश प्रस्तुत कर रहे हैं:

"कम्युनिस्ट नैतिकता के सम्बन्ध में लेनिन के विचार" नामक लेख का अंश

लेनिन का सम्बन्ध उस पीढ़ी से था जो पिशारेव शेड्रिन, नेक्रासोव, दोब्रोल्यूबोव तथा चेर्नीशेव्स्की के प्रभाव में पली थी। 'ईस्क्रा' (सेण्ट पीट्सबर्ग से 1859 से लेकर 1873 प्रकाशित होने वाली व्यंग्य पत्रिका) के कवि पुरानी अर्द्धदास व्यवस्था के अवशेषों का निर्ममता से मज़ाक बनाते थे; दुराचारिता, दासवृत्ति, खुशामदीपन, धोखाधड़ी, अधकचरेपन तथा नौकरशाहाना तौर-तरीक़ों पर वे कठोर प्रहार करते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के लेखक कहते थे कि जीवन का और भी ज़्यादा क़रीब से अध्ययन किया जाना चाहिए और पुराने सामन्ती व्यवस्था के अवशेषों को खोलकर सामने रख देना चाहिए। लेनिन अपने प्रारम्भिक जीवन से ही अधकचरेपन, गपबाज़ी, समय की व्यर्थ बर्बादी, "सामाजिक हितों से" पारिवारिक जीवन को विलग रखने की बात से नफ़रत करते थे; स्त्रियों को खिलवाड़ की चीज़ बनाने, उन्हें मनोरंजन की वस्तु अथवा आज्ञाकारिणी दासी का रूप देने की बात से वे घृणा करते थे। उस तरह के जीवन से उन्हें हार्दिक घृणा थी जिसमें कुटिलता तथा अवसरवादिता हो। चेर्नीशेव्स्की के उपन्यास 'क्या करें' से इलिच को विशेष प्रेम था, शेड्रिन का तीव्र व्यंग्य उन्हें बहुत पसन्द था; 'ईस्क्रा' के कवियों को वे बहुत चाहते थे–उनकी अनेक कविताएँ उन्हें याद थीं। नेक्रासोव से वे प्रेम करते थे।

अनेक वर्षों तक व्लादीमीर इलिच को जर्मनी, स्विट्ज़रलैण्ड, इंग्लैण्ड और फ्रांस में प्रवास करना पड़ा था। वे मज़दूरों की सभाओं में जाते थे, मज़दूरों की ज़िन्दगियों का गहरायी से अध्ययन करते थे, इस चीज़ को समझने की कोशिश करते थे कि अपने घरों में वे किस तरह रहते हैं और अपनी छुट्टी के समय को कहवाघरों अथवा घूमने-फिरने में किस तरह बिताते हैं...

परदेश में हम लोग काफ़ी ग़रीबी की हालत में रहते थे। ज़्यादातर हम सस्ते किराये के कमरों में रहते थे जहाँ हर तरह के लोग ठहरते थे। हम लोग अनेक तरह की मकान-मालकिनों के यहाँ रहे थे और सस्ते ढाबों में खाना खाते थे। इलिच को पेरिस के कहवाघर बहुत पसन्द थे; उनमें गाने वाले लोग अपने जनवादी गीतों से पूँजीवादी जनतन्त्र तथा रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के अनेक पहलुओं की तीव्र आलोचना किया करते थे। मौंटेगस के गीत इलिच को विशेष तौर से अच्छे लगते थे। वह एक ''कम्युनार्ड'' (1870 के प्रसिद्ध पेरिस कम्यून में भाग लेने वाला व्यक्ति।) का बेटा था; शहर के बाहरी हिस्सों में रहने वाले लोगों की ज़िन्दगी के बारे में वह अच्छी कविताएँ लिखता था। एक बार एक संध्याकालीन पार्टी में इलिच की मौंटेगस से मुलाक़ात हो गयी; फिर वे क्रान्ति, मज़दूर आन्दोलन तथा समाज के बारे में आधी रात बीतने के बहुत देर बाद तक बातें करते रहे थे। समाजवाद किस तरह एक नये जीवन की सृष्टि करेगा और जीवन की समाजवादी पद्धति क्या है, आदि विषयों पर वे बहुत देर तक बातें करते रहते थे।

नैतिकता के प्रश्नों को व्लादीमीर इलिच सदैव विश्व-दर्शन के प्रश्नों के साथ जोड़कर देखते थे...

2 अक्टूबर, 1920 को तरुण कम्युनिस्ट संघ की तीसरी कांग्रेस में अपने भाषण में व्लादीमीर इलिच ने कम्युनिस्ट नैतिकता के प्रश्न पर विचार किया था और कम्युनिस्ट नैतिकता के मूल तत्व को स्पष्ट करने के लिए सरल, ठोस मिसालें दी थीं। अपने श्रोताओं से उन्होंने कहा था कि सामन्ती और पूँजीवादी नैतिकता महज धोखे की चीज़ें हैं, उनका उद्देश्य ज़मीन्दारों और पूँजीपतियों के हितों में मज़दूरों और किसानों की आँखों में धूल झोंकना और उन्हें मूर्ख बनाना होता है। इसके विपरीत, कम्युनिस्ट नैतिकता का आधार सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष के हित होते हैं। उन्होंने कहा था कि कम्युनिस्ट नैतिकता का लक्ष्य मानव समाज को ऊँचे स्तर पर ले जाना, श्रम के शोषण का अन्त कर देना होना चाहिए। कम्युनिज़्म के संघर्ष को मजबूत करना तथा, अन्त में, उसकी स्थापना करना–यही कम्युनिस्ट नैतिकता का आधार होता है। एकता, अपने ऊपर काबू रखने की क्षमता, नयी सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अनथक रूप से आवश्यक काम करने की योग्यता, इस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए आवश्यक कठोर तथा सचेत अनुशासन क़ायम करने की ज़रूरत, तथा निर्धारित कार्यों की पूर्ति के लिए सुदृढ़ एकता स्थापित करने की आवश्यकता का कितना महत्व है इसे स्पष्ट करने के लिए लेनिन ने ठोस उदाहरण दिये थे। तरुणों से लेनिन ने कहा था कि उन्हें चाहिए कि अपनी सारी शक्ति, अपने सारे श्रम को वे सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य के लिए उत्सर्ग कर दें।

और, इस काम को किस तरह करना चाहिए–इसका आदर्श स्वयं लेनिन का अपना जीवन था। इलिच और किसी तरह से रह ही नहीं सकते थे, वे नहीं जानते थे कि और किसी तरह से कैसे रहा जा सकता है। किन्तु कोई बैरागी-सन्यासी वे नहीं थे; स्केटिंग करना (बर्फ़ पर फिसलने की क्रीड़ा में भाग लेना) तथा तेज़ साइकिल चलाना, पर्वतारोहण करना और शिकार खेलना उन्हें अत्यन्त प्रिय थे। संगीत से उन्हें प्रेम था। उसके समस्त इन्द्रधनुषी सौन्दर्य के साथ जीवन से वे प्यार करते थे। अपने साथियों को वे प्यार करते थे, वे आम लोगों को प्यार करते थे। उनकी सादगी, प्रसन्नताभरी उनकी संक्रामक हँसी से हर एक परिचित है। किन्तु उनसे सम्बन्धित प्रत्येक चीज़ एक मुख्य लक्ष्य के अधीन थी–वह उस संघर्ष के अधीन थी जो सबके लिए एक उज्जवल, प्रबुद्ध, समृद्ध तथा सुखी जीवन की सृष्टि के लिए किया जा रहा था। इस संघर्ष की सफलताओं से जितनी अधिक ख़ुशी उन्हें होती थी उतनी और किसी चीज़ से नहीं होती थी। उनके जीवन का निजी पक्ष उनके काम के सामाजिक पक्ष से स्वाभाविक रूप से मिल जाता था...

मक्सिम गोर्की के नाम लिखे गये एक पत्र का अंश

20 सितम्बर, 1932

समाजवाद के निर्माण का अर्थ केवल विशालकाय फैक्टरियों और आटे की मिलों का निर्माण करना नहीं है। ये चीज़ें ज़रूरी हैं, किन्तु समाजवाद का निर्माण इतने से नहीं नहीं हो सकता। आवश्यक है कि लोगों के मस्तिष्कों और हृदयों का भी विकास किया जाये। और, प्रत्येक व्यक्ति की इस वैयक्तिक उन्नति के आधार पर, अन्ततोगत्वा एक, नये प्रकार की बलशाली समाजवादी सामूहिक इच्छा की सृष्टि की जाये जिसके अन्दर "मैं" और "हम" अभिन्न रूप से मिलकर एकाकार हो जाएँ। इस तरह की सामूहिक इच्छा का विकास गहरी वैचारिक एकता तथा उतने ही गहरे परस्परिक सौहार्द-भाव एवं आपसी समझदारी के आधार पर ही किया जा सकता है।

और इस क्षेत्र में, कला और साहित्य विशेष रूप से असाधारण भूमिका अदा कर सकते हैं। मार्क्स की पूँजी में एक अद्भुत अध्याय है (यहां क्रुप्स्काया "पूँजी" के तेरहवें अध्याय "सहकारिता" का उल्लेख कर रही हैं।--स); उसका ऐसी सरल से सरल भाषा में मैं अनुवाद करना चाहती हूँ जिसे कि अर्द्धशिक्षित लोग भी समझ लें। वह अध्याय सहकारिता के सम्बन्ध में है। उसमें मार्क्स ने लिखा है कि सहकारिता एक नयी शक्ति को जन्म देती है। यह नयी शक्ति जनता का कुल योग मात्र उसकी शक्तियों का कुल योग मात्र नहीं होती, बल्कि एक सवर्था नयी, कहीं, अधिक सबल, शक्ति होती है। सहकारिता पर अपने अध्याय में मार्क्स ने नयी भौतिक शक्ति के विषय में लिखा है। किन्तु उसके आधार पर जब चेतना और संकल्प की एकता हो जाती है, तो वह एक अदम्य शक्ति बन जाती है...

एक बेहद प्रासंगिक और विचारोत्तेजक पुस्तिका

भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल

सोचने के लिए कुछ मुद्दे

आह्वान पुस्तिका–6

मूल्य: 25 रुपये

जर्मन कवि एवं नाटककार बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की 115वीं जन्मतिथि (10 फ़रवरी 1898) के अवसर पर

हम राज करें, तुम राम भजो!

खाने की टेबुल पर जिनके
पकवानों की रेलमपेल
वे पाठ पढ़ाते हैं हमको
'सन्तोष करो, सन्तोष करो!'

उनके धन्धों की ख़ातिर
हम पेट काटकर टैक्स भरें
और नसीहत सुनते जायें -
'त्याग करो, भई त्याग करो!'

मोटी-मोटी तोन्दों को जो
ठूँस-ठूँसकर भरे हुए
हम भूखों को सीख सिखाते
'सपने देखो, धीर धरो!'

बेड़ा गर्क़ देश का करके
हमको शिक्षा देते हैं -
'तेरे बस की बात नहीं
हम राज करें, तुम राम भजो!'

• मनबहकी लाल

(बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता के आधार पर)

लेनिन ज़िन्दाबाद

पहली जंग के दौरान
इटली की सानकार्लो जेल की अन्धी कोठरी में
ठूँस दिया गया एक मुक्ति योद्धा को भी
शराबियों, चोरों और उच्चकों के साथ।
ख़ाली वक़्त में वह दीवार पर पेन्सिल घिसता रहा
लिखता रहा हर्फ़-ब-हर्फ़ –
लेनिन ज़िन्दाबाद!
ऊपरी हिस्से में दीवार के
अँधेरा होने की वजह से
नामुमकिन था कुछ भी देख पाना
तब भी चमक रहे थे वे अक्षर – बड़े-बड़े और सुडौल।
जेल के अफ़सरान ने देखा
तो फौरन एक पुताई वाले को बुलवा
बाल्टी-भर क़लई से पुतवा दी वह ख़तरनाक इबारत।
मगर सफ़ेदी चूँकि अक्षरों के ऊपर ही पोती गयी थी
इस बार दीवार पर चमक उठे सफ़ेद अक्षर :
लेनिन ज़िन्दाबाद!

तब एक और पुताई वाला लाया गया।
बहुत मोटे ब्रुश से, पूरी दीवार को
इस बार सुर्ख़ी से वह पोतता रहा बार-बार
जब तक कि नीचे के अक्षर पूरी तरह छिप नहीं गये।

मगर अगली सुबह
दीवार के सूखते ही, नीचे से फूट पड़े सुर्ख़ अक्षर –
लेनिन ज़िन्दाबाद!

तब जेल के अफ़सरान ने भेजा एक राजमिस्त्री।
घण्टे-भर वह उस पूरी इबारत को
करनी से खुरचता रहा सधे हाथों।
लेकिन काम के पूरा होते ही
कोठरी की दीवार के ऊपरी हिस्से पर
और भी साफ़ नज़र आने लगी
बेदार बेनज़ीर इबारत –
लेनिन ज़िन्दाबाद!

तब उस मुक्तियोद्धा ने कहा,
अब तुम पूरी दीवार ही उड़ा दो!

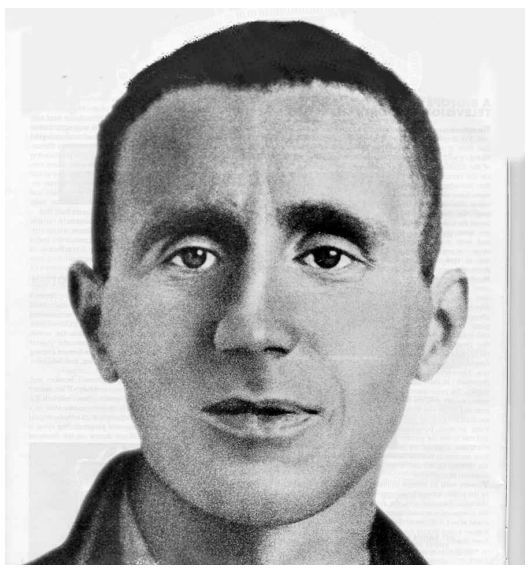

कॉमरेड दीपांकर चक्रवर्ती को इंक़लाबी सलाम!

कॉमरेड दीपांकर चक्रवर्ती नहीं रहे। गत 27 जनवरी, 2013 को कोलकाता में तेघरिया स्थित आवास पर दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया।

दीपांकर दा सच्चे अर्थों में एक कम्युनिस्ट बुद्धिजीवी थे। वह वास्तव में जनता के आदमी थे। क्रान्तिकारी वाम आन्दोलन के वह आजीवन शुभचिन्तक-सहयात्री बने रहे। भारत के जनवादी अधिकार आन्दोलन के वह एक अग्रणी सेनानी थे। ए.पी.डी.आर. के वह संस्थापक सदस्य थे और अन्तिम समय तक उसके उपाध्यक्ष थे।

दीपांकर दा का जन्म 1941 में ढाका में हुआ था। उनकी परवरिश मुर्शिदाबाद में और शिक्षा-दीक्षा बहरामपुर और कोलकाता में हुई थी। छात्र जीवन में ही वह कम्युनिस्ट आन्दोलन के सम्पर्क में आ चुके थे। कृष्णनाथ कॉलेज, बहरामपुर में अर्थशास्त्र पढ़ाने के बाद कोलकाता में रहने लगे थे।

1964 में अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी में संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष जब तीव्र हुआ और भाकपा से माकपा अलग हुई तो दीपांकर दा भी भाकपा से अलग हो गये। जब नक्सलबाड़ी किसान उभार हुआ तो दीपांकर दा ने उसका स्वागत किया। माकपा के नव संशोधनवाद के प्रति उनका आलोचनात्मक रुख था, पर साथ ही वाम दुस्साहसवादी विचलन और कठमुल्लावाद से भी उनकी सहमति नहीं बन पायी। इसी कारणवश, जब भाकपा (मा-ले) की घोषणा हुई तो वह उसमें शामिल नहीं हुए।

'अनीक' बांग्ला पत्रिका का प्रकाशन वह 1964 में ही शुरू कर चुके थे। उसके पूर्व उन्होंने 'पुनश्च' नाम से भी एक लघु पत्रिका निकाली थी। वामपन्थी चिन्तन और विमर्श के एक स्वतन्त्र मंच के रूप में 'अनीक' का अस्तित्व उन्होंने आद्यन्त बनाये रखा। आपातकाल के उन्नीस महीनों के अतिरिक्त 'अनीक' 1964 से लेकर अबतक अविराम प्रकाशित होता रहा है। क्रान्तिकारी वाम आन्दोलन के लिए 'अनीक' की वही भूमिका रही, जो समर सेन द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक 'फ्रण्टियर' की थी। आपातकाल के काले दिनों के दौरान सिद्धार्थ शंकर राय के फासिस्ट दमन के दीपांकर दा भी साक्षी रहे और उन्नीस महीने कारावास में बिताये। उसके बाद भी वाम बौद्धिक दायरे और जनवादी अधिकार आन्दोलन में उनकी निरन्तर भागीदारी बनी रही। हृदय रोग और गिरते स्वास्थ्य ने उनकी ऊर्जस्विता पर कोई प्रभाव नहीं डाला।

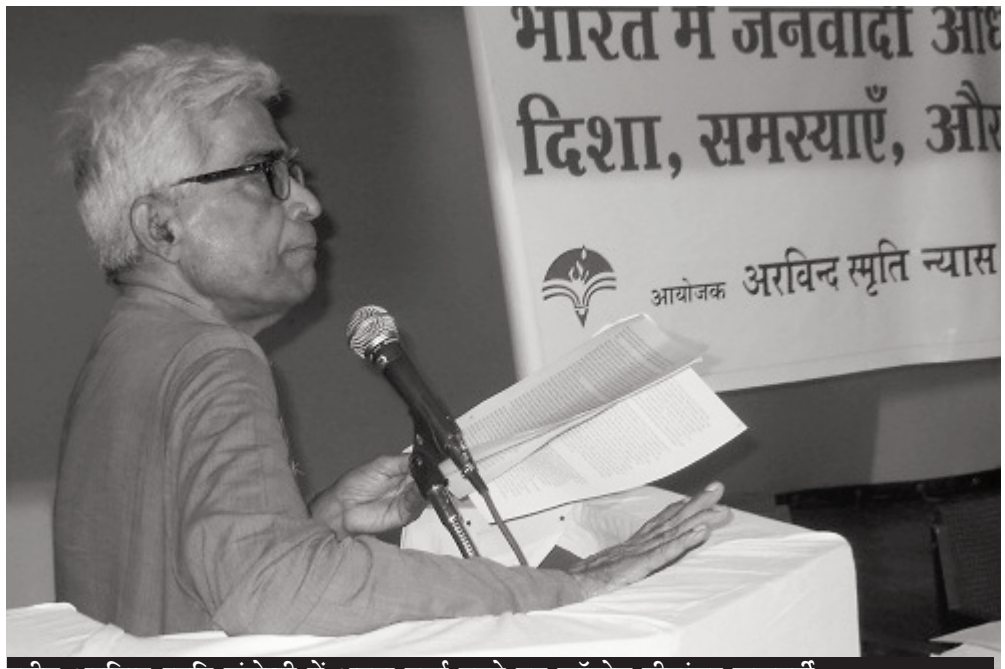

तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी में अपना पर्चा पढ़ते हुए कॉमरेड दीपांकर चक्रवर्ती

2011 में लखनऊ में अरविन्द स्मृति न्यास की ओर से जनवादी अधिकार आन्दोलन पर आयोजित संगोष्ठी में हम लोगों को दीपांकर दा के साथ तीन दिन तीन रात बिताने का और जीवन्त एवं आत्मीय विचार-विमर्श का जो अवसर मिला, वह भुलाया नहीं जा सकता। 'अनीक' के अगले अंक में सेमिनार में पठित कात्यायनी के मुख्य पर्चे को उन्होंने आग्रहपूर्वक छापा था। 'अनीक' में भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम पर जारी बहस में पिछले ही अंक में उन्होंने साथी अभिनव का लेख भी छापा था। 'अनीक' में लिखने के बार-बार के उनके आग्रह को हम लोग पूरा नहीं कर पाते थे, इसका हमेशा अफसोस रहेगा।

दीपांकर दा से हम लोगों का सम्पर्क पच्चीस वर्ष पुराना रहा है। समय के साथ यह प्रगाढ़ होता गया। हमलोगों के आग्रह पर उन्होंने 'पीकिंग-रिव्यू' की दशकों पुरानी दुर्लभ फ़ाइलें उपलब्ध करवायी थीं। अभी निधन से एक सप्ताह पूर्व ही उनसे साथियों की दूरभाष पर लम्बी वार्ता हुई थी और उन्होंने चण्डीगढ़ में 'जाति प्रश्न और मार्क्सवाद' पर होने वाली चौथी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी (12-16, मार्च 2013) में पर्चे सहित आने का पक्का वायदा किया था। अब मार्च में संगोष्ठी में हम लोग जुटेंगे तो दीपांकर दा की अनुपस्थिति गहरायी तक सालती रहेगी।

दीपांकर चक्रवर्ती जनवादी अधिकार आन्दोलन के साथ ही लघुपत्रिका आन्दोलन के भी एक शीर्षस्थ पुरोधा थे। वे 'पीपुल्स बुक सोसायटी' नामक प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थान के संस्थापक थे।

दीपांकर दा का स्थान भरना अत्यन्त कठिन होगा। हम उन्हें कभी नहीं भूल पायेंगे। उनकी स्मृतियों को सादर नमन! उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को इंक़लाबी सलाम!

मारुति मज़दूरों के आन्दोलन को जीत के लिए अपनी ताक़त पर भरोसा करना ही होगा!

(पेज 1 से आगे)

गिरफ़्तार किये गये मज़दूरों पर लगायी गयी थीं। इसलिए एक बात साफ़ है : हरियाणा की हूडा सरकार ने हरियाणा के भीतर मज़दूरों के ख़िलाफ़ जो आतंक राज क़ायम कर रखा है, उसमें हरियाणा के भीतर वह मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन और आन्दोलनरत मज़दूरों को कोई बड़ा डेरा या जुटान नहीं डालने देगी। वह जानती है कि पूरे हरियाणा और खास तौर पर गुड़गांव-मानेसर-धारूहेड़ा के औद्योगिक बेल्ट में मज़दूर जिन हालात में काम कर रहे हैं और जी रहे हैं, उसमें विद्रोह और आन्दोलन की आग उन तक भी पहुँच सकती हैं। इसलिए हरियाणा का प्रशासन अब हरियाणा में एक मन्त्री से दूसरे मन्त्री के घर चक्कर लगाते हुए थकने की इजाज़त तो देगा, लेकिन अगर मारुति सुज़ुकी के मज़दूर किसी निर्णायक संघर्ष के रास्ते पर उतरकर हरियाणा में कहीं अपना अनिश्चितकालीन धरना या भूख हड़ताल शुरू करते हैं, तो ऐसे किसी भी प्रदर्शन को हटवाने और उजाड़ने के लिए हरियाणा सरकार हर सम्भव कदम उठायेगी। दूसरी बात, जो कि अब हरेक मज़दूर के सामने बिल्कुल साफ़ हो चुकी है, वह यह है कि एक दिन के रस्मी प्रदर्शनों से अब हमारे संघर्ष को कुछ हासिल नहीं हो रहा है, और हम बस थक रहे हैं। यही सरकार भी चाहती है और यही उनकी दलाली करने वाले केन्द्रीय ट्रेड यूनियन वाले भी चाहते हैं। जिस चीज़ को ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें बार-बार "तरीक़े से काम करना" कहती हैं, वह यही है कि एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े पर चक्कर लगाते-लगाते थक जाओ! लेकिन हमें इस "तरीक़े" पर चलने से अब कुछ नहीं मिलने वाला है। तीसरी बात, जो हमारे विचार में स्पष्ट है कि निर्णायक संघर्ष तो अब शुरू करना ही पड़ेगा, अन्यथा अब संघर्ष पीछे जायेगा। हम बार-बार कहते आये हैं कि अब वक़्त आ गया है कि हम किसी एक जगह पर खूँटा गाड़कर बैठ जायें और अपने अनिश्चितकालीन धरने की शुरुआत सामान्य भूख हड़ताल से करते हुए उसे क्रमिक भूख हड़ताल, अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल और फिर अगर ज़रूरत पड़ती है, तो उसे आमरण अनशन या मज़दूर सत्याग्रह तक ले जाया जाये। और हमारा स्पष्ट मानना है कि अगर हम ऐसे किसी कार्यक्रम के ज़रिये सरकार पर दबाव बनाना चाहते हैं, और उसे बातचीत की टेबल पर आने और हमारी माँगों पर विचार करने के लिए मजबूर करना चाहते हैं, तो हमारे इस कार्यक्रम की जगह हरियाणा नहीं बल्कि दिल्ली होनी चाहिए। हरियाणा में अगर हम ऐसा कोई लम्बा और निर्णायक कार्यक्रम शुरू करते हैं, तो सरकार की पहली प्रतिक्रिया उसे उजाड़ने आदि की होगा। लेकिन यह चीज़ दिल्ली में नहीं हो सकती है। दूसरी बात यह कि दिल्ली में अगर मारुति सुज़ुकी के मज़दूर ऐसा कोई कार्यक्रम शुरू करते हैं, तो उसे मीडिया की कवरेज़ ज़्यादा अच्छे तरीक़े से मिलेगी। ऐसा होने पर सरकार पर भारी दबाव पैदा होगा। ऐसे दबाव के ज़रिये ही हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि सरकार को अपनी माँगों पर सोचने के लिए बाध्य किया जाये।

आख़िरी बात, जो ग़ौर करने वाली है वह यह है कि, अब वह समय आ गया है जब एम.एस.डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व के साथी यूनियन के भीतर एक नया प्राण-संचार करने के लिए यूनियन के भीतर एक जनतान्त्रिक, पारदर्शी और स्पष्ट निर्णय प्रक्रिया को स्थापित करें। अभी संघर्ष की योजना की ज़िम्मेदारी बनाने, उसे लागू करने और तमाम अन्य फैसलों की ज़िम्मेदारी महज़ नेतृत्व के कुछ साथियों को उठानी पड़ती है। इसमें जनरल बॉडी का कोई विशेष योगदान नहीं रहता है। हमें लगता है कि इससे जनरल बॉडी धीरे-धीरे राजनीतिक तौर पर निष्क्रिय और पैस्सिव होती जायेगी। ऐसे में, पूरी जनरल बॉडी को संघर्ष में जैविक तौर पर शामिल करने के लिए यह ज़रूरी है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में सभी को शामिल किया जाये और उनकी राजनीतिक सक्रियता को फिर से पुनर्जीवित किया जाये। इसके लिए पखवारे पर (15 दिन पर) जनरल बॉडी मीटिंग बुलाकर सभी प्रस्तावों पर विचार करना बेहतर रहता। अब शायद उसके लिए वक़्त न मिले। लेकिन अभी भी संघर्ष के आगे के फैसलों के लिए ऐसी मीटिंग में ही राय-मशविरा हो और फिर निर्णय लिया जाये, इससे बेहतर कोई तरीक़ा नहीं हो सकता। इसका एक कारण और भी है। जिस भी आन्दोलन में नेतृत्व के साथियों पर ही निर्णय लेने और उसे लागू करवाने का सारा बोझ डाल दिया जाता है, उसमें यदि सफलता मिली तो जय-जयकार होती है, और यदि असफलता मिली तो वह महज़ चन्द व्यक्तियों की ज़िम्मेदारी बन जाती है। और उसके बाद दोषारोपण और प्रतिदोषारोपणों का दौर शुरू हो जाता है। ऐसी किसी भी कुरूप प्रक्रिया के शुरू होने से सभी मज़दूर साथियों के बीच एक निराशा फैलती है। संघर्ष के हारे जाने से कभी इतनी निराशा नहीं फैलती जितना कि मज़दूरों के बीच के आपसी संगठन के टूटने से फैलती है। यह आन्तरिक संगठन जो कि एम.एस.डब्ल्यू.यू. ने अब तक प्रशंसनीय रूप से क़ायम रखा है, वह टूटना नहीं चाहिए और इसके लिए ज़रूरी है कि यूनियन के नेतृत्व में चल रहे इस आन्दोलन की समूची राजनीतिक प्रक्रिया को जनवादी और पारदर्शी बना दिया जाये। इससे जीत की ज़िम्मेदारी भी सभी की होगी और हार की ज़िम्मेदारी भी सभी की। नेतृत्व की ज़िम्मेदारी समन्वय, संचालन और मार्गदर्शन करने की होनी चाहिए न कि पीर से लेकर भिश्ती तक सभी कामों को करने की। ऐसे में जनता की पहलकदमी समाप्त हो जाती है, और जीत मिलने पर 'बल्ले-बल्ले' होती है और हार मिलने पर 'थल्ले-थल्ले'। यह एक सही राजनीतिक मज़दूर आन्दोलन की निशानी नहीं होती। ऐसा तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के आन्दोलनों में होता है। हमारा मज़दूर आन्दोलन एक प्रगतिशील और क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन है। और इसमें हमारी पूरी प्रक्रिया जनवादी और पारदर्शी होनी चाहिए। आन्दोलन को आगे कैसे चलाना है, इसे कहाँ तक ले जाना है, इसके फैसले में सभी मज़दूरों की भागीदारी होने से ही आगे का रास्ता स्पष्ट होगा और सभी उस पर दृढ़संकल्प होकर आगे बढ़ेंगे। ऐसे फैसले लेते समय सभी सहयोगी संगठनों के प्रतिनिधियों को बुलाकर जनरल बॉडी मीटिंग में उनकी राय और सुझावों को भी सुना जाना चाहिए और उसके बाद यूनियन की जनरल बॉडी को निर्णय लेना चाहिए कि उसे क्या करना है।

अन्त में, हम एक बार फिर इस बात पर ज़ोर देना चाहेंगे कि मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन और सभी आन्दोलनरत साथियों को अपनी ताक़त पर भरोसा करना चाहिए। किसी बड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन के नेतृत्व, जिसकी पुलिस अधिकारियों और नेताओं-मन्त्रियों तक पहुँच है, उनके दाँव-पेंच से आज तक कोई भी संघर्ष नहीं जीता गया है। संघर्ष मज़दूरों ने हमेशा अपनी ताक़त पर भरोसा करके जीता है। इस संघर्ष को विद्वान व्यक्तियों द्वारा कानाफूसी करके दी जाने वाली सलाहों से भी नहीं जीता जा सकता है। जिसके पास संघर्ष का वाकई कोई रास्ता होता है, और वह उस पर भरोसा करता है, वह अपनी बात को पूरे ज़ोर के साथ सदन और सभा के बीच कहता है। बन्द कमरों में कानों के भीतर खुसफुसाता नहीं है। इसलिए ऐसे विद्वान लोगों से भी सावधान रहना चाहिए। एम.एस.डब्ल्यू.यू. और इस पूरे आन्दोलन को अपनी ताक़त पर भरोसा करते हुए अपने डेरे के लिए मारुति सुज़ुकी के सभी बर्ख़ास्त मज़दूरों और गिरफ़्तार मज़दूरों के परिवारों को गोलबन्द करना चाहिए और एक जगह अंगद की तरह पाँव जमा देना चाहिए। वह जगह कौन-सी हो, हरियाणा या दिल्ली, इसका फैसला भी जनरल बॉडी में जनवादी और पारदर्शी तरीक़े से होना चाहिए। अगर मारुति सुज़ुकी के आन्दोलनरत मज़दूर अपनी ताक़त पर भरोसा करते हुए सही जगह सही वक़्त पर खूँटा गाड़ देंगे, तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियन से लेकर सभी ताक़तें खींझकर अन्ततः आपके साथ खड़ी होंगी। आपको यह समझना चाहिए कि वह आपके विरुद्ध नहीं जा सकती हैं, या तो वे तटस्थ होंगी या आपके साथ आयेंगी। अभी भी तो उनकी भूमिका कोई बहुत अलग नहीं है! ऐसे में, अगर आप निर्णायक संघर्ष का रास्ता चुनते हैं और एक जगह डेरा डालकर अपना सत्याग्रह शुरू कर देते हैं, तो इससे आप खोने क्या जा रहे हैं? कुछ भी नहीं! इसलिए अपनी ताक़त पर भरोसा करने की ज़रूरत है और आगे बढ़ने की ज़रूरत है। हमें यह समझना होगा कि रस्म अदायगी करने के लिए हमारे पास बहुत समय नहीं बाकी है। देशव्यापी प्रदर्शनों की बहुत अहमियत होती है क्योंकि वे मज़दूरों में एक हौसला और वर्ग एकता का अहसास पैदा करते हैं। लेकिन उसका भी सही वक़्त होता है। हम कम-से-कम इस समय देशव्यापी प्रदर्शनों के चक्कर में पड़कर मुम्बई, बरेली, के चक्कर काटने के लिए अपने साथियों को नहीं भेज सकते; यह ऊर्जा का अपव्यय होगा। इस समय अपने मुख्य कार्य पर ज़ोर देना चाहिए। अगर हम एक जगह डेरा डालेंगे तो उसके पक्ष में देश भर में प्रदर्शन होने का कोई अर्थ है। लेकिन हम स्वयं अपनी ताक़त पर भरोसा करके एक जगह खूँटा गाड़कर नहीं बैठते, तो फिर देश भर के अलग-अलग शहरों में 50-100 लोगों के इकट्ठा हो जाने से क्या हासिल होगा? इससे भी तभी कुछ हासिल होगा जब हमारी मुख्य शक्ति एक जगह पर अपने सत्याग्रह का डेरा डाल दे। तब देश भर के अलग-अलग हिस्सों में भी प्रदर्शन होने चाहिए और तब इसका भारी फ़ायदा भी संघर्ष को मिलेगा। लेकिन इस मुख्य काम के बिना ऐसे प्रदर्शन भी रस्म अदायगी और कवायद बनकर रह जायेंगे। इसलिए अब इस चीज़ को हम जितनी जल्दी समझेंगे, हमारे संघर्ष का जो भी फैसला होना है, उतनी जल्दी होगा। और अगर हम सही वक़्त पर सही योजना के साथ निर्णायक हो गये, तो कौन जानता है, कि हम अपना संघर्ष जीत ही जायें, या कम-से-कम आंशिक तौर पर जीत जायें। लेकिन इसके लिए बिना देर किये फैसला लेने और अपनी ताक़त पर भरोसा करने की ज़रूरत है, और हम जानते हैं कि एम.एस.डब्ल्यू.यू. इस काम को अंजाम देने में सक्षम है।

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों की "न्याय अधिकार रैली" और उनके समर्थन में देशव्यापी प्रदर्शन।

मारुति सुज़ुकी में हुई 18 जुलाई की घटना के छह महीने गुज़र चुके हैं लेकिन आज भी बर्ख़ास्त मज़दूर अपने न्याय की लड़ाई जारी रखे हुए हैं। वहीं दूसरी तरफ हरियाणा सरकार के पुलिस-प्रशासन, श्रम कार्यालय से लेकर मारुति प्रबन्धन का मज़दूर-विरोधी क्रूर चेहरा और ज़्यादा नंगा हो रहा है जिसकी ताज़ा मिसाल यूनियन के नेतृत्वकारी साथी ईमान ख़ान की गिरफ़्तारी है। साफ़ है कि मज़दूरों पर दमन के लिए पूँजी की सभी ताक़तें एकजुट हैं और उनके ख़िलाफ़ मारुति के मज़दूर भी अपने फ़ौलादी इरादों के साथ डटे हुए हैं। वैसे अगर हम छह माह के संघर्ष पर नज़र डालें, तो मारुति मज़दूरों अब तक कई धरनों और रैलियों से लेकर ऑटो-सम्मेलन का भी आयोजन कर चुके, जिसमें उन्होंने हरियाणा सरकार के उद्योगमन्त्री रणदीप सुरजेवाल, श्रममन्त्री शिवचरण लाल शर्मा से लेकर खेल व युवा मन्त्री सुखबीर कटारिया तक के सामने आपनी माँगे रखीं, लेकिन सभी जगह मज़दूरों को सिर्फ़ कोरे आश्वासन ही मिले।

जिसके बाद मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने राज्यव्यापी साईकिल जत्था का कार्यक्रम लिया है। ये जत्था "न्याय अधिकार रैली" के रूप में 21 जनवरी से चार जिलों से शुरू किया गया। "न्याय अधिकार रैली" ने गाँव-शहर जाकर जनता के बीच अपनी आपबीती रखी तथा मज़दूर विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ 27 जनवरी के दिन रोहतक में भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के आवास पर प्रदर्शन में शामिल होने का आह्वान किया। मारुति मज़दूरों के अभियान को रोकने के लिए हरियाणा पुलिस ने मारुति प्रबन्धन के वफ़ादार कुत्ते की भूमिका अदा की और 24 जनवरी को गुड़गांव में हो रही प्रेस वार्ता से यूनियन की प्रोविजनल कमेटी के नेतृत्वकारी साथी ईमान ख़ान को गिरफ़्तार कर लिया, और उनको उसी दिन कोर्ट में पेश करके 147 मज़दूरों के साथ जेल भेज दिया गया, जबकि ईमान ख़ान का नाम चार्ज़शीट में शामिल नहीं था लेकिन ईमान ख़ान पर भी अन्य मज़दूरों की तरह धारा 302, 307 और 120(बी) लगा दी गयीं हैं जो हरियाणा सरकार की मज़दूर-विरोधी मंशा को जाहिर करता है। वहीं दूसरी तरफ धारूहेड़ा से आ रहे जत्थे को बिलासपुर में रोककर दूर-दराज के इलाक़े में छोड़ दिया। ये दोनों ही घटनाएँ मारुति सुज़ुकी के संघर्ष को कुचलने की कोशिशें थीं। लेकिन मज़दूरों की एकजुटता और साहस ने हरियाणा सरकार की इस साजिश को सफल नहीं होने दिया।

और 27 जनवरी को रोहतक में क़रीब 3,000 मारुति मज़दूरों, उनके परिवार-जनों से लेकर तमाम यूनियनों, कर्मचारी संगठनों ने "न्याय अधिकार रैली" में आन्दोलन को समर्थन दिया। सभा की शुरुआत में यूनियन के रामनिवास ने बताया कि 18 जुलाई की घटना के बाद से हरियाणा सरकार, पुलिस-प्रशासन से लेकर मारुति प्रबन्धन ने मज़दूरों के विरुद्ध की गयी एकतरफ़ा कार्रवाई में क़रीब 2,500 मज़दूरों को बर्ख़ास्त कर दिया है तथा 147 मज़दूरों को बिना किसी उच्च न्यायिक जाँच के जेल में बन्द कर दिया है, जो दिखाता है कि आज के समय में यूनियन बनाने का संवैधानिक अधिकार और ठेका प्रथा ख़त्म करने की न्यायसंगत माँग

(पेज 5 पर जारी)

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (सोलहवीं किश्त)

● आनन्द सिंह

इस धारावाहिक लेख की चौथी किस्त 'नयी समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' अख़बार के अन्तिम अंक (जून, 2010) में प्रकाशित हुई थी। उसी अख़बार के उत्तराधिकारी के रूप में नवम्बर 2010 में जब 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन शुरू हुआ तो प्रवेशांक में कुछ अपरिहार्य कारणों से इस लेख की अगली किस्त नहीं दी जा सकी। दिसम्बर 2010 अंक से पुनः इस धारावाहिक लेख का प्रकाशन शुरू किया गया है। इसकी पहली बारह किस्तों के लेखक आलोक रंजन हैं। – सम्पादक

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त : खोखले सिद्धान्त, नंगी सच्चाइयाँ

मूलभूत अधिकारों की चर्चा के दौरान हमने देखा कि भारतीय संविधान नागरिकों को एक इन्सानी ज़िन्दगी जीने के लिए ज़रूरी बेहद बुनियादी सामाजिक और आर्थिक अधिकारों तक की भी कोई गारण्टी नहीं देता। संविधान के भाग तीन में उल्लिखित मूलभूत अधिकारों का चरित्र मुख्यतः राजनीतिक है। सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से जुड़े कुछ प्रावधान संविधान के भाग चार में (अनु. 36 से अनु. 51 तक) राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त शीर्षक के तहत मौजूद हैं। संविधान निर्माताओं को राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को संविधान में डालने की प्रेरणा आयरलैण्ड के संविधान से मिली थी। परन्तु इन सिद्धान्तों का खोखलापन इस बात से ही ज़ाहिर हो जाता है कि ये राज्य के लिए विधिक रूप से बाध्यताकारी नहीं हैं। संविधान के चौथे भाग में ही अनु. 37 में स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि इस भाग में मौजूद प्रावधान किसी न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं होंगे। इन अधिकारों को लागू करवाने के लिए संविधान में न तो कोई समयसीमा लिखी है और न ही कोई ज़रिया। हालाँकि अनु. 37 में यह भी लिखा है कि ये सिद्धान्त देश के शासन में मूलभूत हैं और कानून बनाने में इन सिद्धान्तों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा, परन्तु संविधान इस बात पर मौन है कि यदि राज्य इस कर्तव्य से मुकर जाये (जैसा कि भारतीय राज्य बेशर्मी से मुकर चुका है), तो क्या किया जाये!

संविधान के निर्माता कहे जाने वाले डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर ने नीति निदेशक सिद्धान्तों पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि हालाँकि ये सिद्धान्त किसी अदालत में प्रवर्तनीय नहीं हैं, फिर भी ये महत्वपूर्ण इसलिए हैं क्योंकि ये जनता की अदालत में प्रवर्तनीय हैं। उनका यह सोचना था कि कोई भी सरकार इन सिद्धान्तों को दरकिनार नहीं कर सकती क्योंकि यदि वह ऐसा करेगी तो जनता अगले चुनावों में उसे गिरा देगी। स्पष्ट है कि बुर्जुआ लोकतन्त्र के बारे में अम्बेडकर इस गफ़लत के शिकार थे कि यह वास्तव में जनता का शासन होता है। संविधान लागू होने के 63 साल बाद भी आलम यह है कि इन नीति निदेशक सिद्धान्तों का पालन होना तो दूर, भारतीय राज्य इनसे पल्ला झाड़ रहा है। पिछले दो दशकों से जारी नव-उदारवादी नीतियों के दौर में, जिन पर कमोबेश सभी चुनावी पार्टियों की आम-सहमति है, तो ये सिद्धान्त और भी ज़्यादा खोखले और पाखण्डपूर्ण लगते जा रहे हैं।

आइये, अब इन नीति निदेशक सिद्धान्तों की तफ़सीलों में जाते हैं। संविधान के अनु. 39 में राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति सिद्धान्त उल्लिखित हैं। इनमें अनु. 39(ख) और अनु. 39(ग) को सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र स्थापित करने में सबसे अहम माना जाता है। अनु. 39(ख) कहता है कि राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार बँटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो। अनु. 39(ग) कहता है कि आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो। आइये, इन दो अहम नीति निदेशक सिद्धान्तों की रोशनी में भारतीय राज्य के प्रदर्शन की पड़ताल करें। संविधान लागू होने के छह दशक से भी ज़्यादा का समय बीत जाने पर भारत में ग़रीबों की संख्या अफ्रीका के 26 देशों को मिलाकर भी वहाँ के कुल ग़रीबों की संख्या से ज़्यादा है। दूसरी ओर धन पशुओं की संख्या में दुनिया में सबसे ज़्यादा तरक्की करने वाले देशों में भारत का नाम अग्रिम पंक्तियों में लिया जाता है। इससे तो यही साबित होता है कि भौतिक संसाधनों का स्वामित्व सामूहिक हितों की बजाय बस धनिकों के हितों में हो रहा है और धन तथा उत्पादन-साधनों का संकेन्द्रण हो रहा है। यही नहीं पिछले दो दशकों में यह संकेन्द्रण और भी तेजी से बढ़ा है। एक आँकड़े के मुताबिक नव-उदारवादी नीतियों के लागू होने के बाद से नीचे की दस फ़ीसदी आबादी और ऊपर की दस फ़ीसदी आबादी की आय के बीच का फ़र्क दो गुना बढ़ा है। हाल के दिनों में आयी कई रिपोर्टों में यह निर्विवाद रूप से सामने आया है कि आय में असमानता दर्शाने वाले गिनी गुणांक में वृद्धि हो रही है, यानी असमानता बढ़ रही है। ऐसे में यह स्पष्ट है कि नव-उदारवादी नीतियाँ नीति निदेशक सिद्धान्तों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन कर रही हैं। परन्तु न सिर्फ सभी चुनावी पार्टियाँ बल्कि भारतीय बुर्जुआ लोकतन्त्र के अन्धकार भरे परिदृश्य में उम्मीद की आख़िरी किरण कही जाने वाली न्यायपालिका ने भी नव-उदारवादी नीतियों को बेशर्मी से बेरोकटोक आगे बढ़ाया है। ऐसे में क्या यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि ये सिद्धान्त धोखाधड़ी की मिसाल हैं?

आइये, अब आगे बढ़ते हैं। संविधान के अनु. 39 में सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन के अधिकार की बात भी कही गयी है। इस सिद्धान्त का दीवालियालापन इसी बात से ज़ाहिर हो जाता है कि संविधान लागू होने के छह दशक बाद भी देश के अलग-अलग हिस्सों में करोड़ों युवा रोज़गार की तलाश में दर-दर भटकते रहते हैं और बेराज़गारी की वजह से निराशा, हताशा और अवसाद के शिकार होते हैं। अनु. 39 में ही स्त्रियों और पुरुषों को समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार का प्रावधान है। ज़मीनी हक़ीकत यह है कि स्त्रियों को किसी कारखाने में रखा ही इसलिए जाता है क्योंकि पुरुषों के मुकाबले उनकी श्रम शक्ति की कीमत कम देनी पड़ती है।

अनु. 39 में ही श्रमिकों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न करने की बात कही गयी है और ऐसी परिस्थिति बनाने की बात कही गयी है जिससे आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोज़गार में न जाना पड़े जो उनकी आयु और शक्ति के अनुकूल न हो। इसके अतिरिक्त इसी अनुच्छेद में बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ देने की बात भी कही गयी है। यदि वास्तव में इन सिद्धान्तों का पालन हुआ होता तो निश्चय ही हमारा समाज एक मानवीय समाज होता। परन्तु जब हम भारतीय समाज में व्याप्त बेरोज़गारी और बाल मज़दूरी की परिघटना से रूबरू होते हैं तो ये सिद्धान्त एक क्रूर मज़ाक के समान चुभते हैं।

कहने को तो मज़दूरों के लिए और भी प्रावधान नीति निदेशक सिद्धान्तों के रूप में मौजूद हैं। मसलन, काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं और प्रसूति सहायता का प्रावधान (अनु. 42), निर्वाह मज़दूरी का प्रावधान (अनु. 43) और उद्योगों के प्रबन्ध में मज़दूरों के भाग लेने का प्रावधान (अनु. 43 (क))। परन्तु श्रम के बढ़ते हुए अनौपचारीकरण और ठेकाकरण के इस युग में ये सभी प्रावधान बेमानी हैं। इन प्रावधानों के संविधान में होने या न होने से एक आम मज़दूर की ज़िन्दगी में कोई फ़र्क नहीं पड़ता क्योंकि पूँजी रूपी डायन रोज़ाना उसका खून चूसती ही जा रही है।

एक अन्य अहम नीति निदेशक सिद्धान्त अनु. 47 में मौजूद है जिसके अनुसार राज्य का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य को सुधारने का प्रयास करेगा। भारतीय राज्य पिछले छह दशकों में अपने इस प्राथमिक कर्तव्य का पालन करने में पूरी तरह से विफ़ल रहा है। यह इसी बात से ज़ाहिर हो जाता है कि अभी भी इस देश में लगभग 47 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं और आधी से ज़्यादा महिलाएँ कुपोषण की शिकार हैं। जहाँ एक ओर अमीरों के लिए सुपर स्पेशिएलिटी अस्पताल बन रहे हैं जिनमें इलाज करवाने के लिए दुनिया भर से लोगों को मेडिकल टूरिज़्म के नाम पर न्योता दिया जाता है, वहीं ग़रीब और उनके बच्चे हैजा, काला अजार, जापानी बुखार, मलेरिया, डेंगू जैसी बीमारियों से रोज़ाना दम तोड़ते रहते हैं क्योंकि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा जर्जर हो चुकी हैं और दवा कम्पनियों के मुनाफ़े की हवस के चलते दवाइयों के दाम आसमान छूते जा रहे हैं। चिकित्सा सेवा पूरी तरह से एक ऐसे माल में तब्दील हो चुकी है जो आम मेहनतकश जनता की पहुँच से बाहर है। ऐसे में, जब यह दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि राज्य अपने प्राथमिक कर्तव्य का पालन कर पाने में पूरी तरह फिसड्डी साबित हुआ है, संविधान भारतीय नागरिकों को क्या उपचार प्रदान करता है? इसका जवाब है – कुछ भी नहीं!

एक अन्य महत्वपूर्ण नीति निदेशक सिद्धान्त अनु. 44 में मौजूद है जिसमें कहा गया है कि राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। परन्तु विडम्बना यह है कि पिछले छह दशकों में यह प्रयास शुरू तक नहीं किया गया है। राज्य की इस निष्क्रियता का ख़ामियाजा पिछले छह दशकों से अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं को भुगतना पड़ रहा है क्योंकि विवाह, तलाक, सम्पत्ति हस्तान्तरण, गोद लेने जैसे मसलों पर अभी भी पर्सनल लॉ के अनुसार निर्णय लिया जाता है जो घोर महिला विरोधी हैं।

कुछ सालों पहले जब छह से चौदह वर्ष की आयु तक के बच्चों की शिक्षा को मूलभूत अधिकार का दर्ज़ा दिया गया था तो शासक वर्ग के नुमाइन्दों ने मीडिया में खूब प्रचारित किया कि वह एक क्रान्तिकारी कदम था और उसके द्वारा उन्होंने राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों पर अमल किया। परन्तु संविधान के अनु. 45 में राज्य को संविधान लागू होने से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरा होने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रावधान बनाने की ज़िम्मेदारी दी गयी थी। भारतीय राज्य ने न सिर्फ इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने में आधी सदी की देरी की बल्कि जब पूरी भी की तो आधे-अधूरे ढंग से क्योंकि नीति निदेशक सिद्धान्तों में चौदह वर्ष तक के सभी बच्चों की शिक्षा की भी बात की गयी जबकि संविधान के संशोधन के द्वारा 6-14 वर्ष तक के बच्चों तक की शिक्षा का ही प्रावधान किया गया है।

इनके अतिरिक्त, नीति निदेशक सिद्धान्तों में कुछ गाँधीवादी सिद्धान्त भी हैं जो गाँधी के ग्राम स्वराज्य के यूटोपिया से प्रेरित हैं। पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के क़ायम रहते हुए ग्राम स्वराज्य कल्पना की दुनिया से उतरकर जमीनी यथार्थ में तब्दील हो ही नहीं सकता। यह इन सिद्धान्तों के लागू होने की प्रक्रिया से साफ़ समझ में आ जाता है। मसलन अनु. 40 को ही लें जिसमें राज्य को ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाने के लिए और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करने के लिए कहा गया है जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों। संविधान लागू होने के चार दशकों के अन्तराल तक तो गाँधी का यह सपना संविधान के मोटे पोथे में दफ़न ही रहा। 1993 में 73वें संविधान संशोधन के द्वारा इस सपने को पुनर्जीवित करने की क़वायद शुरू की गयी। परन्तु इन चार दशकों में पूँजीवाद की गंगा में काफ़ी पानी बह चुका था क्योंकि तब तक पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुके थे। ऐसे में यह अचरज की बात नहीं है कि गाँधी का पंचायती राज का सपना भारतीय पूँजीवादी लोकतन्त्र के ढाँचे में श्रम की लूट में ग्रामीण बुर्जुआ और कुलकों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों के रूप में एक नये स्तर के निर्माण करने की क़वायद में तब्दील हो चुका है।

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को बाध्यताकारी न बनाने के पीछे संविधान निर्माताओं का तर्क यह था कि जब संविधान बनाया जा रहा था उस वक़्त भारतीय राज्य के पास इतने संसाधन नहीं थे कि वह इन सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित कर सके। अव्वलन तो यह तर्क अपने आप में युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि आज़ादी के बाद ज़मीदारों, राजे-रजवाड़ों, नवाबों की सम्पत्ति जब्त करके तथा धनिकों पर भारी कर लगाकर संसाधन जुटाये जा सकते थे। परन्तु कुछ देर के लिए यदि इस तर्क को स्वीकार भी कर लिया जाये तो फिर अगला तार्किक सवाल यह उठता है राज्य को इतना सक्षम होने में कितना वक़्त लगेगा कि वह इन सिद्धान्तों को लागू कर सके। इस सवाल पर संविधान मौन है। छह दशक से भी ज़्यादा वक़्त

(पेज 2 पर जारी)

क्या करें? (लेनिन)

ट्रेड-यूनियनवादी और सामाजिक-जनवादी राजनीति

जनवाद के लिए सबसे आगे बढ़कर लड़ने वाले के रूप में मज़दूर वर्ग

हम देख चुके हैं कि अधिक से अधिक व्यापक राजनीतिक आन्दोलन चलाना और इसलिए सर्वांगीण राजनीतिक भण्डाफोड़ का संगठन करना गतिविधि का एक बिल्कुल ज़रूरी और **सबसे ज़्यादा तात्कालिक** ढंग से ज़रूरी कार्यभार है, बशर्ते कि यह गतिविधि सचमुच सामाजिक-जनवादी ढंग की हो। परन्तु हम इस नतीजे पर **केवल** इस आधार पर पहुँचे थे कि मज़दूर वर्ग को राजनीतिक शिक्षा और राजनीतिक ज्ञान की फौरन ज़रूरत है। लेकिन यह सवाल को पेश करने का एक बहुत संकुचित ढंग है, कारण कि यह आम तौर पर हम सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के और ख़ास तौर पर वर्तमान काल के रूसी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के आम जनवादी कार्यभारों को भुला देता है। अपनी बात को और ठोस ढंग से समझाने के लिए हम मामले के उस पहलू को लेंगे, जो ''अर्थवादियों'' के सबसे ज़्यादा ''नजदीक'' है, यानी हम व्यावहारिक पहलू को लेंगे। ''हर आदमी यह मानता है'' कि मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना को बढ़ाना ज़रूरी है। सवाल यह है कि यह काम **कैसे** किया जाये, इसे करने के लिए क्या आवश्यक है? आर्थिक संघर्ष मज़दूरों को केवल मज़दूर वर्ग के प्रति सरकार के रवैये से सम्बन्धित सवाल उठाने की ''प्रेरणा देता है'' और इसलिए हम ''आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देने'' की **चाहे जितनी भी कोशिश करें,** इस लक्ष्य की सीमाओं के अन्दर-अन्दर रहते हुए हम मज़दूरों की राजनीतिक चेतना को **कभी नहीं उठा पायेंगे** (सामाजिक-जनवादी राजनीतिक चेतना के स्तर तक), कारण कि ये **सीमाएँ बहुत संकुचित हैं।** मार्तीनोव का सूत्र हमारे लिए थोड़ा-बहुत महत्व रखता है, इसलिए नहीं कि उससे चीज़ों को उलझा देने की मार्तीनोव की योग्यता प्रकट होती है, बल्कि इसलिए कि उससे वह बुनियादी ग़लती साफ़ हो जाती है, जो सारे ''अर्थवादी'' करते हैं, अर्थात उनका यह विश्वास कि मज़दूरों की राजनीतिक वर्ग-चेतना को उनके आर्थिक संघर्ष के अन्दर से बढ़ाया जा सकता है, अर्थात इस संघर्ष को एकमात्र (या कम से कम मुख्य) प्रारम्भिक बिन्दु मानकर, उसे अपना एकमात्र (या कम से कम मुख्य) आधार बनाकर राजनीतिक वर्ग-चेतना बढ़ायी जा सकती है। यह दृष्टिकोण बुनियादी तौर पर ग़लत है। ''अर्थवादी'' लोग उनके ख़िलाफ़ हमारे वाद-विवाद से नाराज़ होकर इन मतभेदों के मूल कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से इन्कार करते हैं, जिसका यह परिणाम होता है कि हम एक दूसरे को कतई नहीं समझ पाते, दो अलग-अलग ज़बानों में बोलते हैं।

मज़दूरों में राजनीतिक वर्ग-चेतना **बाहर से ही** लायी जा सकती है, यानी केवल आर्थिक संघर्ष के बाहर से, मज़दूरों और मालिकों के सम्बन्धों के क्षेत्र के बाहर से। वह जिस एकमात्र क्षेत्र से आ सकती है, वह राजसत्ता तथा सरकार के साथ **सभी** वर्गों तथा स्तरों के सम्बन्धों का क्षेत्र है, वह **सभी** वर्गों के आपसी सम्बन्धों का क्षेत्र है। इसलिए इस सवाल का जवाब कि मज़दूरों तक राजनीतिक ज्ञान ले जाने के लिए क्या करना चाहिए, केवल यह नहीं हो सकता कि ''मज़दूर के बीच जाओ'' – अधिकतर व्यावहारिक कार्यकर्ता, विशेषकर वे लोग, जिनका झुकाव ''अर्थवाद'' की ओर है, यह जवाब देकर ही सन्तोष कर लेते हैं। **मज़दूरों** तक राजनीतिक ज्ञान ले जाने कि लिए सामाजिक-जनवादी कार्यकर्ताओं को **आबादी के सभी वर्गों के बीच जाना** चाहिए और अपनी सेना की टुकड़ियों को **सभी दिशाओं में** भेजना चाहिए।

हमने इस बेडौल सूत्र को जान-बूझकर चुना है, हमने जान-बूझकर अपना मत अतिसरल, एकदम दो-टूक ढंग से व्यक्त किया है – इसलिए नहीं कि हम विरोधाभासों का प्रयोग करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि हम ''अर्थवादियों'' को वे काम करने की ''प्रेरणा देना'' चाहते हैं, जिनको वे बड़े अक्षम्य ढंग से अनदेखा कर देते हैं, हम उन्हें ट्रेड-यूनियनवादी राजनीति और सामाजिक-जनवादी राजनीति के बीच अन्तर देखने की ''प्रेरणा देना'' चाहते हैं, जिसे समझने से वे इन्कार करते हैं। अतएव हम पाठकों से यह प्रार्थना करेंगे कि वे झुँझलाएँ नहीं, बल्कि अन्त तक ध्यान से हमारी बात सुनें।

पिछले चन्द बरसों में जिस तरह का सामाजिक-जनवादी मण्डल सबसे अधिक प्रचलित हो गया है, उसे ही ले लीजिये और उसके काम की जाँच कीजिये। ''मज़दूरों के साथ उसका सम्पर्क'' रहता है और वह इससे सन्तुष्ट रहता है, वह परचे निकालता है, जिनमें कारख़ानों में होने वाले अनाचारों, पूँजीपतियों के साथ सरकार के पक्षपात और पुलिस के जुल्म की निन्दा की जाती है। मज़दूरों की सभाओं में जो बहस होती है, वह इन विषयों की सीमा के बाहर नहीं जाती या जाती भी है, तो बहुत कम। ऐसा बहुत कम देखने में आता है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के बारे में, हमारी सरकार की घरेलू तथा विदेश नीति के प्रश्नों के बारे में, रूस तथा यूरोप के आर्थिक विकास की समस्याओं के बारे में और आधुनिक समाज में विभिन्न वर्गों की स्थिति के बारे में भाषणों या वाद-विवादों का संगठन किया जाता है। और जहाँ तक समाज के अन्य वर्गों के साथ सुनियोजित ढंग से सम्पर्क स्थापित करने और बढ़ाने की बात है, उसके बारे में तो कोई सपने में भी नहीं सोचता। वास्तविकता यह है कि इन मण्डलों के अधिकतर सदस्यों की कल्पना के अनुसार आदर्श नेता वह है, जो एक समाजवादी राजनीतिक नेता के रूप में नहीं, बल्कि ट्रेड-यूनियन के सचिव के रूप में अधिक काम करता है, क्योंकि हर ट्रेड-यूनियन का, मिसाल के लिए, किसी ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन का, सचिव आर्थिक संघर्ष चलाने में हमेशा मज़दूरों की मदद करता है, वह कारख़ानों में होने वाले अनाचारों का भण्डाफोड़ करने में मदद करता है, उन कानूनों तथा कदमों के अनौचित्य का पर्दाफाश करता है, जिनसे हड़ताल करने और धरना देने (हर किसी को यह चेतावानी देने के लिए कि अमुक कारख़ाने में हड़ताल चल रही है) की स्वतन्त्रता पर आघात होता है, वह मज़दूरों को समझाता है कि पंच-अदालत का जज, जो स्वयं बुर्जुआ वर्गों से आता है, पक्षपातपूर्ण होता है, आदि-आदि। सारांश यह कि ''मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष'' ट्रेड-यूनियन का प्रत्येक सचिव चलाता है और उसके संचालन में मदद करता है। पर इस बात को हम जितना ज़ोर देकर कहें थोड़ा है कि **बस इतने ही से** सामाजिक-जनवाद **नहीं** हो जाता, कि सामाजिक-जनवादी का आदर्श ट्रेड-यूनियन का सचिव नहीं, बल्कि एक ऐसा **जन-नायक** होना चाहिए, जिसमें अत्याचार और उत्पीड़न के प्रत्येक उदाहरण से, वह चाहे किसी भी स्थान पर हुआ हो और उसका चाहे किसी भी वर्ग या संस्तर से सम्बन्ध हो, विचलित हो उठाने की क्षमता हो; उसमें इन तमाम उदाहरणों का सामान्यीकरण करके पुलिस की हिंसा तथा पूँजीवादी शोषण का एक अविभाज्य चित्र बनाने की क्षमता होनी चाहिए; उसमें प्रत्येक घटना का, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, लाभ उठाकर अपने समाजवादी विश्वासों तथा अपनी जनवादी माँगों को **सभी लोगों** को समझा सकने और **सभी लोगों** को सर्वहारा के मुक्ति-संग्राम का विश्व ऐतिहासिक महत्व समझा सकने की क्षमता होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, (इंग्लैण्ड की सबसे शक्तिशाली ट्रेड यूनियनों में से एक, बॉयलर-मेकर्स सोसाइटी के विख्यात सचिव एवं नेता) राबर्ट नाइट जैसे नेता की विल्हेल्म लीब्कनेख़्त जैसे नेता से तुलना करके देखिये और इन दोनों पर उन अन्तरों को लागू करने की कोशिश कीजिये, जिनमें मार्तीनोव ने *ईस्क्रा* के साथ अपने मतभेदों को प्रकट किया है। आप पायेंगे – मैं मार्तीनोव के लेख पर नजर डालना शुरू कर रहा हूँ – कि जहाँ राबर्ट नाइट ''जनता का कुछ ठोस कार्रवाइयों के लिए आह्वान'' ज़्यादा करते थे (पृ. 39), वहाँ विल्हेम लीब्कनेख़्त ''सारी वर्तमान व्यवस्था का या उसकी आंशिक अभिव्यक्तियों का क्रान्तिकारी स्पष्टकरण'' करने की ओर अधिक ध्यान देते थे (पृ. 38-39); जहाँ राबर्ट नाइट ''सर्वहारा की तात्कालिक माँगों को निर्धारित करते थे तथा उनकी पूर्ति के उपाय बताते थे'' (पृ. 41), वहाँ विल्हेल्म लीब्कनेख़्त यह करने के साथ-साथ ''विभिन्न विरोधी स्तरों की सक्रिय गतिविधियों का संचालन करने'' तथा ''उनके लिए काम का एक सकारात्मक कार्यक्रम निर्दिष्ट करने''* से नहीं हिचकते थे (पृ. 41); राबर्ट नाइट ही थे, जिन्होंने ''जहाँ तक सम्भव हो, आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देने'' की कोशिश की (पृ. 42) और वह ''सरकार के सामने ऐसी ठोस माँगें रखने में, जिनसे कोई ठोस नतीजा निकलने की उम्मीद हो,'' बड़े शानदार ढंग से कामयाब हुए (पृ. 43); लेकिन लीब्कनेख़्त ''एकांगी'' ढंग का ''भण्डाफोड़'' करने में अधिक मात्रा में लगे रहते थे (पृ. 40); जहाँ राबर्ट नाइट ''नीरस दैनिक संघर्ष की प्रगति'' को अधिक महत्व देते थे (पृ. 61), वहाँ लीब्कनेख़्त ''आकर्षक एवं पूर्ण विचारों के प्रचार'' को ज़्यादा महत्वपूर्ण समझते थे (पृ. 61); जहाँ लीब्कनेख़्त ने अपनी देखरेख में निकलने वाले पत्र को ''क्रान्तिकारी विरोध-पक्ष का एक ऐसा मुखपत्र बना दिया था, जिसने हमारे देश की अवस्था का, विशेषतया राजनीतिक अवस्था का, जहाँ तक वह आबादी के सबसे विविध स्तरों के हितों से टकराती थी, भण्डाफोड़ किया'' (पृ. 63), वहाँ राबर्ट नाइट ''सर्वहारा वर्ग के संघर्ष के साथ घनिष्ठ और सजीव सम्पर्क रखते हुए मज़दूर वर्ग के ध्येय के लिए काम करते थे'' (पृ. 63) – यदि ''घनिष्ठ और सजीव सम्पर्क'' रखने का मतलब स्वयंस्फूर्ति की पूजा करना है, जिस पर हम ऊपर क्रिचेव्स्की तथा मार्तीनोव के उदाहरण का उपयोग करते हुए विचार कर चुके हैं – और ''अपने प्रभाव के क्षेत्र को सीमित कर लेते थे,'' क्योंकि मार्तीनोव की तरह उनका भी यह विश्वास था कि ऐसा करके वह ''उस प्रभाव को और गहरा बना देते थे'' (पृ. 63)। संक्षेप में, आप देखेंगे कि मार्तीनोव सामाजिक-जनवाद को वस्तुत: ट्रेड यूनियनवाद के स्तर पर उतार लाते हैं, हालाँकि वह ऐसा स्वभावत: इसलिए नहीं करते कि वह सामाजिक-जनवाद का भला नहीं चाहते, बल्कि केवल इसलिए करते हैं कि प्लेख़ानोव को समझने की तकलीफ़ गवारा करने के बजाय उन्हें प्लेख़ानोव को और गूढ़ बनाने की जल्दी पड़ी हुई है।

लेकिन आइये, अपने बयान की ओर लौट आयें। हमने कहा था कि यदि कोई सामाजिक-जनवादी सचमुच सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक चेतना को सर्वांगीण रूप से विकसित करना आवश्यक समझता है, तो उसे ''आबादी के सभी वर्गों के बीच जाना'' चाहिए। इससे नीचे लिखे ये सवाल पैदा होते हैं : यह कैसे किया जाये? क्या यह करने के लिए हमारे पास काफ़ी शक्तियाँ हैं? क्या सभी अन्य वर्गों में इस प्रकार का काम करने के लिए कोई आधार मौजूद है? क्या ऐसा करने का अर्थ या इसका नतीजा वर्गीय दृष्टिकोण से पीछे हटना नहीं होगा? आइये, इन सवालों पर थोड़ा विचार करें।

हमें सिद्धान्तकारों के रूप में, प्रचारकों, आन्दोलनकर्ताओं और संगठनकर्ताओं के रूप में ''आबादी के सभी वर्गों के बीच जाना'' चाहिए। इस बात में किसी को सन्देह नहीं है कि सामाजिक-जनवादियों के सैद्धान्तिक काम का लक्ष्य विभिन्न वर्गों की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति की सभी विशेषताओं का अध्ययन होना चाहिए। परन्तु कारख़ानों के जीवन की विशेषताओं का अध्ययन करने का जितना प्रयत्न किया जाता है, उसकी तुलना में इस प्रकार के अध्ययन का काम बहुत ही कम, हद दरजे तक कम, किया जाता है। समितियों और मण्डलों में आपको कितने ही ऐसे लोग मिलेंगे, जो मसलन धातु-उद्योग की किसी विशेष शाखा के अध्ययन में ही डूबे हुए हैं, पर इन संगठनों में आपको ऐसे सदस्य शायद ही कभी ढूँढ़े मिलेंगे, जो (जैसा कि अक्सर होता है, किसी कारणवश व्यावहारिक काम नहीं कर सकते) हमारे देश के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के किसी ऐसे तात्कालिक प्रश्न के सम्बन्ध में विशेष रूप से सामग्री एकत्रित कर रहे हों, जो आबादी के अन्य हिस्सों में सामाजिक-जनवादी काम करने का साधन बन सके। मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के वर्तमान नेताओं में से अधिकतर में प्रशिक्षा के अभाव की चर्चा करते हुए हम इस प्रसंग में भी प्रशिक्षा की बात का जिक्र किये बिना नहीं रह सकते, क्योंकि ''सर्वहारा के संघर्ष के साथ घनिष्ठ और सजीव सम्पर्क'' की ''अर्थवादी'' अवधारणा से इसका भी गहरा सम्बन्ध है। लेकिन निस्सन्देह, मुख्य बात है जनता के सभी स्तरों के बीच **प्रचार** और **आन्दोलन।** पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादी कार्यकर्ता को इस मामले में उन सार्वजनिक सभाओं और प्रदर्शनों से, जिसमें भाग लेने की **सबको** स्वतन्त्रता होती है, और इस बात से बड़ी आसानी हो जाती है कि वह संसद के अन्दर सभी वर्गों के प्रतिनिधियों से बातें करता है। हमारे यहाँ न तो संसद है और न सभा करने की आज़ादी, फिर भी हम वैसे मज़दूरों की बैठकें करने में समर्थ हैं, जो **सामाजिक-जनवादी** की बातों को सुनना चाहते हैं। हमें आबादी के उन सभी वर्गों के प्रतिनिधियों की सभाएँ बुलाने में भी समर्थ होना चाहिए, जो किसी **जनवादी** की बातों को सुनना चाहते हैं, कारण कि वह आदमी सामाजिक-जनवादी नहीं है, जो व्यवहार में यह भूल जाता है कि ''कम्युनिस्ट हर क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन करते हैं'', कि इसलिए हमारा कर्तव्य है कि अपने समाजवादी विश्वासों को एक क्षण के लिए भी न छिपाते हुए हम **समस्त जनता के सामने आम जनवादी कार्यभारों** की व्याख्या करें तथा उन पर ज़ोर दें। वह आदमी सामाजिक-जनवादी नहीं है, जो व्यवहार में यह भूल जाता है कि **सभी** आम जनवादी समस्याओं को उठाने, तीक्ष्ण बनाने और हल करने में उसे और **सब लोगों से आगे** रहना है।

*मिसाल के लिए, फ्रांस और प्रशा के युद्ध के समय लीब्कनेख़्त ने **पूरे जनवादी पक्ष** के लिए कार्रवाई का एक कार्यक्रम निर्दिष्ट किया था – और मार्क्स तथा एंगेल्स ने तो 1848 में यह और भी बड़े पैमाने पर किया था।

महाकुम्भ में सन्तों की घृणित मायालीला, विहिप की धर्मसंसद में साम्प्रदायिक प्रेत जगाने का टोटका और आम मेहनतकश जन के लिए कुछ ग़ौरतलब सवाल

प्रयाग में चल रहे सदी के दूसरे महाकुम्भ में ''आस्था का सैलाब'' उमड़ रहा है। बहुत-से लोगों की तर्कक्षमता व विवेक इस सैलाब में बहकर निर्वाण को प्राप्त कर रहा है। पर जिनकी तर्कक्षमता व विवेक अपनी जगह पर डटा हुआ है हम उनसे कुछ बातें साझा करना चाहते हैं।

इस महाकुम्भ की तैयारी पर केन्द्र सरकार व राज्य सरकार द्वारा अकूत धन ख़र्च किया गया। केवल राज्य सरकार द्वारा 1,000 करोड़ रुपये से ज़्यादा ख़र्च किया जा चुका है। आस्था की आड़ में ख़र्च का यह महाघड़ा जनता के सिर पर लाद दिया गया। जबकि जनता की रात इस सर्द मौसम में भी सड़कों पर व पेड़ों के नीचे बीत रही है। इस आबादी के लिए मेला क्षेत्र में रैन बसेरों की संख्या नगण्य है। और पूरी दुनिया को अपना परिवार बताने वाले ''सन्तों'', ''महात्माओं'' के भव्य, सुविधासम्पन्न शिविर में केवल उनके शिष्यों को ही शरण मिलती है। हाँ! इन सन्त-महात्माओं का ख्याल राज्य की ''समाजवादी'' सरकार द्वारा खूब ढंग से रखा गया है। इनकी सुरक्षा के इन्तज़ामात के प्रबन्ध तो देखिये। जूना अखाड़े के महन्त कैलाशानन्द की सुरक्षा में आधा दर्जन पुलिस के जवान लगे हैं। जगतगुरू पंचानन की सुरक्षा में पंजाब पुलिस के एक दर्ज़न कमाण्डो लगे हैं। शंकराचार्यों की सुरक्षा में तो पी.ए.सी. की पूरी कम्पनी ही तैनात है। मौनी अमावस्या पर इन सन्तों के शाही स्नान (सन्त और शाही स्नान?) के लिए अपर पुलिस अधीक्षक के नेतृत्व में, दो सहायक पुलिस अधीक्षक, आठ पुलिस उपअधीक्षक, दो सहायक पुलिस उपअधीक्षक, चार कम्पनी आर.ए.एफ., छः कम्पनी पी.ए.सी., पर्याप्त संख्या में नागरिक पुलिस बल, 48 घोड़े, एक टीम वी.डी.डी.एस. की तथा एक टीम ए.एस. की लगायी गयी है। मतलब कि सारा का सारा बोझ आम जनता पर। जबकि यह ख़र्च तमाम अखाड़ों मठों, महामण्डलेश्वरों से, जो कि अरबपति और खरबपति हैं, स्पेशल कुम्भ मेला टैक्स के रूप में लेना चाहिए। सरकार की जिम्मेदारी जनता के सुरक्षा इन्तज़ामात की ही होनी चाहिए।

अब उन धर्मध्वजाधारियों, महामण्डलेश्वरों, शंकराचार्यों, परमाचार्यों, जगतगुरुओं, परमहंसों, दण्डियों और सन्तों-महन्तों के असली चरित्र पर नज़र दौड़ायी जाय जिन पर सरकार इतनी मेहरबान है। ये सभी धन-दौलत या भौतिक सुख-साधनों को या इन्हीं के शब्दों में कहें तो ''माया'' को मुक्ति में बाधक बताते हैं। जबकि खुद इसी माया में लोट लगा रहे हैं, डूब-उतरा रहे हैं। कारों, छोटी बसों, ट्रैक्टरों पर बने सोने के सिंहासन या चाँदी के हौदे पर रखा महाघड़ा-सा नग्न, चर्बीला, थुलथुला पेट जिसमें मुख-द्वार से निरन्तर खाद्य पदार्थों की ठुसाई करते, शाही स्नान के लिए जाते सन्त समाज के भौंड़े जुगुप्सित ''माया प्रदर्शन'' को देखकर मितली आने लगती है। यही नहीं, 'माया' का फूहड़ और भद्दा प्रदर्शन करने के लिए इनमें जो होड़ मची है, उसे देखकर यही कहना पड़ेगा कि 'माया महा ठगिनि हम जानी।' माया ही मानक है। जिसके पास जितनी माया, वह उतना बड़ा सन्त! सोने-चाँदी की नौका से भवसागर पार करने में जुटे सन्तों की माया के कुछ उदाहरण दें, तो बात ज़रा आसानी से समझ में आसानी आ सकती है। नया उदासीन अखाड़े के महामण्डलेश्वर चाँदी के हौदे में निकले, तो पायलट बाबा के शिष्य 100-100 ग्रा. के सोने के कड़े पहनकर। सन्त अवधूत अरुण के मोबाइल फोन पर तो सोने की परत चढ़ी हुई है। बाबा भौतिक सुख-सुविधाओं से दूर रहकर, त्याग-तपस्या से ही ''मुक्ति'' सम्भव बताते हैं पर ये सभी ''आध्यात्मिक बाबा'' महँगी-महँगी गाड़ियों, फोन, लैपटॉप, आइपैड का इस्तेमाल करने में बड़े-बड़े धनकुबेरों को पीछे छोड़ देते हैं। बाबाओं को माया ने ठग लिया और बाबा जनता को ठगने में लगे हैं।

थोड़ा इनके 'माया-मुक्ति-मण्डपों' की खोज-खबर भी ज़रूरी है। जूना पीठाधीश्वर अवधेशानन्द के प्रवचन महाकक्ष तथा ड्राइंगरूम किसी फाइव स्टार होटल से कम नहीं हैं। आसाराम बापू जैसे सन्तों के 'मुक्ति-मण्डप' के केवल गेट के निर्माण में ही 20 लाख रुपये ख़र्च हुए हैं। सीताराम यज्ञ के लिए बन रहे 11 मंजिला यज्ञशाला के निर्माण में 1 करोड़ पचास लाख तो केवल बाँस-बल्लियों पर ख़र्च आया है। महेश योगी की समाधि पर बन रहे मन्दिर पर 40 करोड़ की लागत आयी है। मन्दिर के अन्दर की दीवारों पर संगमरमर के ऊपर गोल्ड एन्ग्रेविंग (पत्थरों पर अक्षरों को उकेरकर सोने से लिखावट) के लिए अमेरिका के डॉ. हैरी आल्टो को लगाया गया है जबकि वास्तुशास्त्री हैं जर्मनी के डॉ. आई.के. हार्टमैन! (दुनिया को ज्ञान-विज्ञान सिखाने का दावा करने वाले इन सन्तों को भारत में कोई विश्वकर्मा नहीं मिला!)

अब ज़रा सोचिये! एक तरफ ये माया-मुक्त सन्त समाज है और दूसरी तरफ देश की 84 करोड़ जनता, जो सुबह से शाम तक खटने के बावजूद एक दिन में 20 रु. से अधिक नहीं कमा पाती। 9000 बच्चे भूख और कुपोषण से रोज़ मर जाते हैं और 36 करोड़ लोग बेघर या झुग्गी-झोंपड़ीवासी है। इस आबादी को भौतिक सुखों या ''माया'' से दूर रहने, कम से कम में जीने में ही आत्मिक सन्तोष प्राप्त करने का प्रवचन देने वाले बाबाओं का भोग-विलास देखकर तो आप भी शायद मेरी तरह यही कहेंगे – ग़रीब जनता के अमीर सन्तो! जनता को माया त्यागकर (जो कि वस्तुतः उसके पास है ही नहीं) परलोक सुधारने का उपदेश देने वालो! तुम्हारे परलोक का क्या होगा? तुम्हारी माया देखकर तो इन्द्र भी खुशी-खुशी स्वर्ग का सिंहासन छोड़ देंगे! तुम्हारे विलासी फूहड़ माया प्रदर्शन पर जितना धन ख़र्च होता है वो जनता पर किया जाता, तो परलोक की कौन जाने पर इहलोक से उनकी कुछ समस्याओं का अन्त ज़रूर हो जाता। हाँ! एक बात छूट रही थी कि भक्तों की जगह इन धर्मगुरुओं के हृदय में होती है (अब बाबा लोग तो यही बताते हैं!)। देखा नहीं, चिदानन्द स्वामी प्रीति जिंटा को साथ लेकर घूम रहे थे। यह ज़रूर है कि क्लास (वर्ग) का ध्यान बाबा लोग भी रखते हैं। तभी तो शाही स्नान का मार्ग सार्वजनिक कर दिये जाने पर अखाड़ा परिषद के महन्त ज्ञानदास मेला प्रशासन पर बिफ़र पड़े। उन्होंने बताया कि इससे इष्ट देव का अपमान होता है। इनके इष्ट देव को केवल एसी गाड़ियों में घूमने वाले साफ़-सुथरे, चिकने-चिकने लोग ही पसन्द हैं। पर धर्मगुरुओ, आपको कम से कम झूठ तो नहीं बोलना चाहिए!

बाबाजी, आप तो नम्बर एक के पाखण्डी निकले! दूसरों को माया का उपदेश देते हैं और खुद माया दोनों हाथों से बटोरने में लगे हैं। इस महाकुम्भ में सन्त समाज द्वारा ''अलौकिक आनन्द'' का तीन से चार दिन का पैकेज प्रति व्यक्ति 7,500 से 11,000 रुपये की दर से बेचा जा रहा है। पर बाबा, इतने महँगे पैकेज से आपके करोड़ों ग़रीब भक्त ''अलौकिक आनन्द'' से वंचित ही रह जायेंगे। पर एक बात है बाबा, धन्धा अच्छा है!

सन्त-महात्मा अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से जनता के अज्ञानरूपी अन्धकार को भगाने में जुटे हैं। अपने इसी दिव्य ज्ञान से इन्होंने बताया कि मौनी अमावस्या पर अमृत योग है। इस योग पर गंगा में डुबकी लगाने वालों को मनोवांछित फल प्राप्त होगा। 3 करोड़ लोग मनोवांछित फल पाने के लिए महाकुम्भ पहुँच गये। पर स्नान करके लौटते समय स्टेशन पर मची भगदड़ में 40 लोग मारे गये। अब इन लोगों ने डुबकी लगाते समय भगदड़ में मारे जाने की मनोकामना तो नहीं की होगी। इससे तो पता चलता है कि ये अज्ञान के सबसे बड़े पुंज हैं, लेकिन लगता है कि ये अपनी छीछालेदर कराके ही मानेंगे। इस घटना के बाद बाबा ने फिर अपने ज्ञानचक्षु खोले और बताया कि इस हादसे में ग्रहों की बहुत बड़ी भूमिका रही। कुम्भराशि में बुध के साथ मंगल भी आ गया और अमंगल कर दिया। पर सन्त जी का कोई अमंगल नहीं हुआ। हो सकता है कि इस अमृत-योग पर महात्मा जी स्नान ही नहीं किये। वाह रे! कूपमण्डूक कुतर्की।

फिर आप दोमुँहेपन की भी बहुत ठोस मिसाल पेश करते हैं। आप गंगा को मइया व उसके पानी को अमृत बताते हैं जबकि ख़ुद गंगा के किनारे रहकर मिनरल वाटर पीते हैं। सभी अखाड़ों के लिए हर रोज़ स्थानीय थोक विक्रेताओं से गाड़ियों में भर-भरकर बोतलों की पेटी पहुँचायी जा रही है। पंचायती अखाड़ा के महामण्डलेश्वर जसराजपुरी ने अपने शिविर में पानी शुद्ध करने के लिए प्यूरीफायर लगवा रखा है। बाबाजी! आस्था के नाम पर ये दोमुँहापन कब तक? आपके लिए वह पानी गन्दा है और जनता के लिए अमृत!

आसाराम जी बड़े पहुँचे हुए सन्त हैं। अपनी पत्रिका ''ऋषि प्रसाद'' में ज्ञान दिया कि अगर देखने का मजा, स्वाद का मजा लेने की आदत बनी रही तो पतंगे, मछली की योनि में जायेंगे, सुगन्ध लेने की आदत बनी रही तो भौंरा बनेंगे। स्वामी जी आपको सफ़ेद कपड़े पहनने की आदत है, अपने परम ज्ञान के मुताबिक तो आप अगले जन्म में बगुला या पहाड़ी चूहे की योनि में जायेंगे। आसाराम को यह परम ज्ञान उन साधुओं को ज़रूर देना चाहिए जो कि खुलेआम गाँजा चढ़ाते रहते हैं। कायदे से तो इन पर मुकदमा दर्ज होना चाहिये।

इन बाबाओं में से तो कई सेक्स स्कैण्डल (जैसे स्वामी नित्यानन्द! ये भी अपना पाप धोने चुपके-से महाकुम्भ पहुँच गये और महानिर्वाणी अखाड़ा द्वारा महामण्डलेश्वर की उपाधि पाने के बाद तो खुलेआम हौदे में बैठकर शाही स्नान के लिए गये), यौन उत्पीड़न, धोखाधड़ी, ज़मीन कब्जा (जैसे बाबा रामदेव! वह भी हौदे में बैठकर शाही स्नान के लिए गये) वेश्यावृत्ति आदि के कारण सुर्खियों में रहे।

इनका रूप पहले भी ऐसा ही था, तभी तो रैदास ने लिखा था कि – मन चंगा, तो कठौती में गंगा। और कबीर ने भगवा रंग का कपड़ा ओढ़कर जनता को ठगने वालों पर कठोर व्यंग्य करते हुए लिखा कि – मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा, दढ़िया बढ़ाय, जोगी होई गइले बकरा। और बिना कुछ सोचे-विचारे, भेड़ों के रेवड़ की तरह गंगा स्नान के लिए चली जा रही जनता को भी कोसा है – चली कुलबोरनी गंगा नहाय, बहुरी भुजाइन सतुआ बनाइन मोटरी बनाइ के खसम के सिर पर दिहिन धराय, गंगा नहाइन यमुना नहाइन नौ मन मइल लिहिन चढ़ाय, पाँच पचीस के धक्का खाइन घरहु के पूँजी आइन गँवाय। सिर घुटाने से मोक्ष मिलता है! इस पर कबीर ने व्यंग्य करते हुए कहा था कि – मूंड़ मुड़ाये हरि मिले, तो सब कोई लेई मुड़ाय, बार-बार के मूंड़ते भेड़ न बैकुण्ठे जाय। हालाँकि, कबीर आज जीवित होते तो विहिप, आर.एस.एस. तो उनका घर घेर लिये होते।

तो, इन पेटुओं, लोलुपों, धोखेबाजों, चार सौ बीसों, मायावियों, अन्धविश्वासियों, विलासियों को मेहनतकश अवाम कब तक पूजती रहेगी! मेहनतकश अवाम को इनकी असलियत समझनी ही होगी और इन सभी को इनके उचित स्थान पर पहुँचाने की तैयारी में जुट जाना होगा।

इस महाकुम्भ के एक और पहलू पर मेहनतकश अवाम को ज़रूर सोचना चाहिए। जनता की धार्मिक आस्था का प्रतिक्रियावादी धार्मिक संगठनों, शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों द्वारा हमेशा से अपने घृणित स्वार्थ के लिए इस्तेमाल होता रहा है। और तमाम धार्मिक प्रतिक्रियावादियों को इस महाकुम्भ से उपयुक्त जगह भला और कहाँ मिल सकती थी। विश्व हिन्दू परिषद इस महाकुम्भ में बड़े जोर-शोर से मन्दिर राग अलाप रही है। प्रयाग तमाम प्रतिक्रियावादी नारों के होर्डिंग्स से पटा हुआ है। भ्रष्टाचार में फँसे नितिन गडकरी की जगह भाजपा अध्यक्ष बने राजनाथ सिंह तत्काल इस कोरस में शामिल हो गये। अब भ्रष्टाचार का मुद्दा भाजपा उठा नहीं सकती क्योंकि वह ख़ुद ही ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार में लिप्त है। विहिप ने तो अभी तक पिछली बार मन्दिर निर्माण का नारा लगाकर जो चन्दा इकट्ठा किया है, उसका हिसाब भी नहीं दिया। वहीं, भाजपा फिर से आगामी चुनाव में वोट की रोटी मन्दिर निर्माण की आग लगाकर सेंकना चाहती है। मुट्ठी भर प्रतिक्रियावादियों का जमावड़ा महाकुम्भ में हुआ जिसमें विहिप, आर.एस.एस., बजरंग दल के गुर्गे शामिल थे। शंकराचार्यों के बारे में बड़ा मतभेद है क्योंकि पहले एक शंकराचार्य थे, फिर चार हुए और अब गली-गली में शंकराचार्य हैं। और इस जमावड़े को नाम दिया गया – धर्म संसद! वैसे तो आर.एस.एस. के मोहन भागवत को आधुनिकता से बहुत परहेज है और 'संसद' शब्द तो प्राचीन ग्रन्थों, वेदों में भी नहीं मिलता, फिर यह नाम! इसका 'कट्टर हिन्दू दरबार' जैसा नाम रखते तो ज़्यादा सही होता! और इसका चरित्र भी 'संसद' की अवधारणा से मेल नहीं खाता। संसद तो जन निर्वाचित संस्था है जबकि ''धर्म संसद'' के तमाम प्रतिक्रियावादी स्वनिर्वाचित स्वयंभू ''धर्म सांसद'' हैं। फिर संसद में तो हर वर्ग, धर्म के लोगों का प्रतिनिधित्व होता है जबकि इसमें केवल हिन्दू धर्म के मठाधीश ही शामिल थे। ग़ौरतलब है कि सन्तों के कई गुट धर्म संसद में शामिल नहीं थे। जैसे शंकराचार्य स्वरूपानन्द, जो कांग्रेसी सन्त हैं और अधोक्षजानन्द, जो सपा के सन्त हैं। सन्त भी पार्टियों के हिसाब से बँटे हुए हैं! गौ, गंगा, मन्दिर निर्माण के नारों से, जाहिर है कि भारतीय समाज में भारी विभाजन और अलगाव पैदा होगा। वैसे ये सन्तगण अलगाववाद के बहुत ''विरोधी'' हैं। नार्थ ईस्ट में कुख्यात कानूनों के ख़िलाफ़ चल रहे आन्दोलन पर ये अलगाववाद का ठप्पा लगा देते हैं। ग़रीबी के ख़िलाफ़ उठने वाली आवाज़ को देश को तोड़ने की साजिश बता देते हैं। फिर इस धर्म संसद में जिस लोकप्रिय लोकतान्त्रिक विकास पुरुष को भारत के अगले प्रधानमन्त्री के रूप में प्रोजेक्ट किया गया, वह है नरेन्द्र मोदी! दुनिया जानती है कि गुजरात में हज़ारों बेगुनाह मुसलमानों का क़त्ल करवाकर साम्प्रदायिक दंगों की आँच में इस शख़्स ने सत्ता हासिल की थी। गुजरात में हुए क़त्लेआम और सामूहिक बलात्कार काण्डों की तुलना केवल जर्मन नात्सियों के बर्बर

(पेज 7 पर जारी)

नौसेना विद्रोह (18-23 फ़रवरी, 1946) एक ज्वलन्त इतिहास

हमारे स्वाधीनता आन्दोलन को बुर्जुआ नेताओं और उनकी मुख्य पार्टी कांग्रेस ने समझौता-दबाव-समझौता की नीति के तहत चलाया और अन्त में इस देश की मेहनतकश जनता को समझौते के द्वारा आधी-अधूरी अज़ादी प्राप्त हुई। हमें तमाम पूँजीवादी बुराइयाँ तो मिली ही, साथ में विरासत के तौर पर सामन्ती और मध्ययुगीन रूढ़िवादी मूल्य-मान्यताएँ, गुलामी की मानसिकता और अपूर्ण भूमिसुधार भी सौगत में मिले। किन्तु स्वाधीनता आन्दोलन का पूरा इतिहास जनता की ऐसी शौर्यपूर्ण घटनाओं से भी भरा पड़ा है जिनपर हम फ़क्र कर सकते हैं और आगामी संघर्षों के लिए प्रेरणा ले सकते हैं। **ये ज्वलन्त घटनाएँ तिलक पर चले मुकदमे के समय भारत के मज़दूरों की पहली राजनीतिक हड़ताल, गदर आन्दोलन, एच.एस.आर.ए. (भगतसिंह और उनके साथियों का संगठन) मुम्बई-कलकत्ते से लेकर कानपुर तक के मज़दूरों के जुझारू संघर्षों, आज़ाद हिन्द फौज पर मुकदमे के समय उठे जनसंघर्षों, नौसेना विद्रोह आदि से होती हुई तेभागा-पुनप्रा-वायलार और तेलंगाना के जबर्दस्त जुझारू किसान संघर्षों तक फैली हुई हैं।** आज भले ही बिकाऊ पूँजीवादी मीडिया के घटाघोप में ये घटनाएँ विस्मृति के गर्त में समा गयी हों, लेकिन इस देश की मेहनतकश आवाम के लिए अपने शूरवीरों की कुर्बानियों की याददिहानी बेहद ज़रूरी है। शाही नौसेना का विद्रोह हमारे स्वाधीनता संग्राम की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके इतिहास से पता चलता है कि वास्तविक संघर्ष संगठित होने पर अंग्रेजों और देशी बुर्जुआ नेताओं की धुकधुकी कैसे बढ़ जाती थी। प्रख्यात इतिहासकार सुमित सरकार के अनुसार ''**आज़ाद हिन्द फौज के जवानों के ठीक विपरीत शाही नौसेना के इन नाविकों को कभी राष्ट्रीय नायकों जैसा सम्मान नहीं मिला, यद्यपि उनके कारनामों में कुछ अर्थों में आज़ाद हिन्द फौज के फौजियों से कहीं अधिक ख़तरा था। जापानियों के युद्धबन्दी शिविर की कठिनाई भरी ज़िन्दगी जीने से आज़ाद हिन्द फौज में भरती होना कहीं बेहतर था।**''

नौसेना विद्रोह का घटनाक्रम कुछ इस प्रकार से था – द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण नौसेना का विस्तार किये जाने के फलस्वरूप देश के हर कोने से इसमें जवान भरती हुए थे। पूरे विश्व की उथल-पुथल की घटनाओं के साथ ही देश में आन्तरिक जनआन्दोलन का प्रभाव भी हर किसी जगह की तरह नौसेना के अन्दर भी देखा जा सकता था। औपनिवेशिक गुलामी, गैर-बराबरी और नस्ली भेदभाव से नौसेना भी अछूती नहीं थी। इस संघर्ष की शुरुआत 18 फ़रवरी को घटिया भोजन, भेदभाव और नस्ली अपमान के विरोध में नाविकों द्वारा की गयी भूख हड़ताल के रूप में हुई। ये नाविक **सिगनल्स प्रशिक्षण प्रतिष्ठान 'तलवार'** के नाविक थे। **19 फ़रवरी** को हड़ताल कैसल और फोर्ट बैरकों सहित बम्बई बन्दरगाह के **22 समुद्री जहाजों** में फैल गयी थी। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को धता बताते हुए **समुद्री बेड़े के मस्तूलों पर तिरंगे, चाँद और हसिये-हथौड़े वाले झण्डे एकसाथ लहराते दिखे।** नाविकों ने जल्द ही चुनाव के माध्यम से एक नौसेना केन्द्रीय हड़ताल समिति का गठन किया जिसके प्रमुख एम.एस. ख़ान थे। भूख हड़ताल की माँगे बेहतर भोजन तथा अंग्रेज और भारतीय नाविकों के लिए समान वेतन से जुड़ी माँगें थीं। साथ ही, आज़ाद हिन्द फौज के सैनिकों की रिहाई, अन्य राजनीतिक कैदियों की रिहाई तथा इण्डोनेशिया से सैनिकों को वापस बुलाये जाने की राजनीतिक माँगे भी इनके माँगपत्रक में शामिल थीं। इससे नौसैनिकों की राष्ट्रीय चेतना के स्तर को समझा जा सकता है।

मुंबई में 1946 में सड़कों पर उतरे नौसैनिक, जिसके बाद जबलपुर में सैनिकों ने विद्रोह कर दिया।

शान्तिपूर्ण हड़ताल और पूर्ण विद्रोह की पेशोपेश का शिकार होकर, आख़िरकार 20 फ़रवरी को नौसैनिकों ने अपने-अपने जहाज पर लौट जाने के आदेश का पालन किया। वहाँ पर सेना के गार्डों ने उन्हें घेर लिया। 21 फ़रवरी को जब कैसल बैरकों में नौसैनिकों ने घेरा तोड़ने का प्रयास किया तो लड़ाई छिड़ गयी। पर्याप्त गोला-बारूद जहाज से मिल ही रहा था। एडमिरल गॉडफ्रे द्वारा नौसेना को विमान भेजकर नष्ट करने की धमकी दी गयी। दोपहर बाद लोगों की भारी भीड़ नौसैनिकों से स्नेह और एकता को प्रदर्शित करते हुए गेटवे ऑफ इण्डिया पर जुट गयी। इनमें बड़ी संख्या में गोदी मज़दूर, नागरिक और दुकानदार शामिल थे। काफ़ी लोगों के पास नौसैनिकों के लिए भोजन भी था। 22 फ़रवरी तक हड़ताल देश भर के नौसेना केन्द्रों और समुद्र में खड़े जहाजों तक फैल गयी। अपनी चरम अवस्था के समय हड़ताल में **78 जहाज** और **20 तटीय प्रतिष्ठान** शामिल थे। लगभग **20,000 नाविकों** ने इन कार्रवाइयों में हिस्सेदारी की। हिन्दू-मुसलमान मेहनतकश मज़दूरों, विद्यार्थियों और नागरिकों की पुलिस व सेना के साथ हिंसक झडपें हुईं। इनमें लोगों ने नौसैनिकों के प्रति अपना हार्दिक समर्थन प्रकट किया। 22 फ़रवरी को नाविकों के समर्थन में **3,00,000 मज़दूर** काम पर नहीं गये। सड़कों पर बैरिकेड खड़े करके जनता ने पुलिस और सेना से लोहा लिया। यह स्थिति दो दिनों तक बनी रही। ''कानून व्यवस्था को बहाल करने'' के नाम पर अलग से दो सैनिक टुकड़ियाँ लगानी पड़ीं। सरकारी आकलन के मुताबिक ही 228 लोग मारे गए और 1,046 घायल हुए। जबकि वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक हो सकती है।

विद्रोह की समाप्ति 23 फ़रवरी को नाविकों द्वारा समर्पण करने के रूप में हुई। सरदार पटेल ने जिन्ना की मदद से अंग्रेजों और नाविकों का बिचौलिया बनते हुए उनसे सर्मपण करवाया। आश्वासन दिया गया कि उन्हें अंग्रेजी अन्याय का शिकार नहीं होने दिया जायेगा। किन्तु ये आश्वासन जल्द ही भुला दिये गये। यह तो थी विद्रोह की घटना। अब जरा अपने राष्ट्रीय 'नेताओं' के बयानों को भी देख लेते हैं। हमें एक तरफ जहाँ संघर्षों के प्रति जनता की एकजुटता दिखायी देती है, वहीं हमारे 'नेताओं' का रवैया काफ़ी अलहदा था। पटेल ने 1 मार्च 1946 को एक कांग्रेसी नेता को लिखा, ''सेना में अनुशासन को छोड़ा नहीं जा सकता.. . स्वतन्त्र भारत में भी हमें सेना की आवश्यकता होगी। जवाहर लाल नेहरू भी इस बात के कायल थे कि ''हिंसा के उछश्रृंखल उद्रेक को रोकने की आवश्यकता है।'' गाँधी जी ने भी 'बुरा और अशोभनीय' उदाहरण क़ायम करने के लिए नौसैनिकों की निन्दा की व उन्होंने ''शिक्षा'' दी कि यदि नाविकों को कोई शिक़ायत है, तो वे चुपचाप नौकरी छोड़ सकते हैं। गाँधी जी ने यह भी कहा, कि ''हिंसात्मक कार्रवाईयों के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों का एक होना एक अपवित्र बात है....'' 30 मई, 1946 को अंग्रेज वायसराय वेवेल ने अपनी निजी टिप्पणी में लिखा था, '' हमें हर क़ीमत पर हिन्दुओं और मुसलमानों से एकसाथ उलझने से बचना चाहिए।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि कैसे वर्गीय एकजुटता और वास्तविक संघर्ष अंग्रेजों के साथ-साथ 'राष्ट्रीय नेताओं' के मन में भी घबराहट पैदा कर देते थे। नौसेना की केन्द्रीय हड़ताल समिति का अन्तिम सन्देश ये है : **''हमारी हड़ताल हमारे राष्ट्र के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना रही है। पहली बार सेना के जवानों और आम आदमी का ख़ून सड़कों पर एकसाथ, एक लक्ष्य के लिए बहा। हम फौजी इसे कभी नहीं भूलेंगे। हम यह भी जानते हैं कि हमारे भाई-बहन भी इसे नहीं भूलेंगे। हमारी महान जनता ज़िन्दाबाद! जयहिन्द!''**

● अरविन्द

"धर्म द्वारा पागल बनाये गये लोग सबसे ख़तरनाक पागल होते हैं और... जिन लोगों का मक़सद समाज में विघटन पैदा करना होता है, वे हमेशा समझते हैं कि मौका पड़ने पर ऐसे पागलों का असरदार इस्तेमाल किस तरह किया जाता है।"

– देनी दिदरो (प्रबोधन काल के महान फ्रांसीसी दार्शनिक)

कहानी : पारमा के बच्चे

(पेज 15 का शेष)

टोप पहने था। वह टोप को गुद्दी पर करने के लिए सिर को पीछे की ओर झटकता था, लेकिन वह फिर से चेहरे पर आ जाता था। औरत ने लड़के के छोटे-से सिर से उसे उतारकर कुछ गाते तथा हँसते हुए हवा में लहराया, बेहद खुश लड़का सिर ऊपर की ओर करके टोप को देखता रहा, फिर उसे पकड़ने के लिए उछला और फिर ये दोनों आँखों से ओझल हो गये।

बड़ी-बड़ी नंगी भुजाओंवाला लम्बा-तड़ंगा व्यक्ति, जो चमड़े का पेशबन्द बाँधे था, भूरे रंग की चुहिया जैसी छह वर्षीया बालिका को कन्धे पर बिठाये था। उसने आग की लपट जैसे लाल बालोंवाले लड़के की उँगली थामे हुए अपने निकट जाती औरत से कहा:

"समझती हो न, अगर हमारे इस ढंग ने गहरी जड़ जमा ली... तो हमें जीतना मुश्किल होगा। ठीक है न?"

इतना कहकर उसने ज़ोरदार, ऊँचा और विजयी ठहाका लगाया और अपने हल्के-से बोझ को नीली हवा में उछालकर नारा लगाया:

"पारमा ज़िन्दाबाद!"

बच्चों को उठाये या उनके हाथ थामे हुए लोग चले गये और चौक में रह गये कुचले-मुरझाये फूल, टॉफियों के कागज और प्रफुल्ल हमालों के दल और उनके ऊपर थी नयी दुनिया को खोजनेवाले उदात्त व्यक्ति की मूर्ति।

और सड़कों पर से नवजीवन की ओर बढ़ते लोगों की प्रसन्नतापूर्ण ऊँची-ऊँची आवाज़ें ऐसे सुनायी दे रही थीं मानो बहुत बड़े-बड़े बिगुल बज रहे हों।

साहित्य का पन्ना

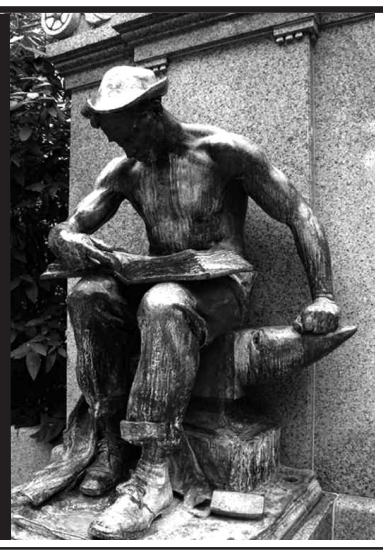

कहानी

पारमा के बच्चे

• मक्सिम गोर्की

जिनोवा में रेलवे स्टेशन के सामने वाले छोटे-से चौक में लोगों की भारी भीड़ जमा थी। उनमें अधिकतर मज़दूर थे, लेकिन बढ़िया कपड़े पहने और सम्पन्न तथा खाते-पीते लोग भी उनमें शामिल थे। नगरपालिका के सदस्य इस भीड़ में सबसे आगे थे। इनके सिरों के ऊपर रेशमी धागों से बड़े कलात्मक ढंग से कढ़ा हुआ नगर-ध्वज फहरा रहा था। पास ही में मज़दूर-संगठनों के रंग-बिरंगे झण्डे हिल-डुल रहे थे। झण्डों के सुनहरे झब्बे, झालरें और तनियाँ तथा ध्वज-डण्डों के धातु से मढ़े हुए बर्छीनुमा सिरे चमचमा रहे थे, रेशम की सरसराहट सुनायी पड़ रही थी, समारोही मन:स्थिति वाली भीड़ का मन्द गायन सहगान की तरह धीमे-धीमे गूँज रहा था।

एक ऊँचे चबूतरे पर कोलम्बस की मूर्ति भीड़ के ऊपर खड़ी थी, उसी कोलम्बस की मूर्ति जिसने अपने विश्वासों के लिए बहुत दुख-दर्द सहे और विजयी भी इसलिए हुआ कि उनमें विश्वास करता था। इस समय भी वह नीचे खड़े लोगों की ओर देख रहा था और अपने संगमरमर के होंठों से मानो यह कह रहा था:

"केवल विश्वास करने वाले ही विजयी होते हैं।"

बाजे बजाने वाले काँसे-ताँबे के अपने बाजे चबूतरे के गिर्द मूर्ति के कदमों में रख दिये थे और वे धूप में सोने की तरह चमक रहे थे।

पीछे की ओर ढालू अर्द्ध-चन्द्राकार स्टेशन की संगमरमर की, भारी-भरकम इमारत ऐसे अपनी भुजाएँ फैलाये खड़ी थी मानो लोगों को अपनी बाहों में भर लेना चाहती हो। बन्दरगाह की ओर से भाप-चालित जहाज़ों की भारी फक-फक, पानी में प्रोपेलर की दबी-घुटी आवाज़, जंजीरों की छनक, सीटियाँ और चीख़-चिल्लाहट सुनायी दे रही थी। चौक में शान्ति थी, उमस थी और वह तेज़ धूप से तप रहा था। घरों के छज्जों और खिड़कियों में औरतें फूल लिये खड़ी थीं तथा उनके पास ही पर्व-त्यौहारों के अवसरों की तरह सजे-धजे और फूलों की तरह प्रतीत होने वाले बच्चे खड़े थे।

स्टेशन की ओर बढ़े आ रहे इंजन ने सीटी बजायी, भीड़ हरकत में आयी, मुड़े-मुड़ाये हुए अनेक टोप काले पक्षियों की भाँति हवा में उछल गये, बजवइयों ने बाजे उठा लिये, कुछ गम्भीर और अधेड़ उम्र के लोग अपने को ठीक-ठाक करके आगे आये, उन्होंने लोगों की ओर मुँह किया और हाथों को दायें-बायें हिलाते-डुलाते हुए भीड़ से कुछ कहने लगे।

धीरे-धीरे और मुश्किल से हटते हुए लोगों ने सड़क पर चौड़ा रास्ता बना दिया।

"किसका स्वागत किया जा रहा है?"

"पारमा नगर के बच्चों का।"

पारमा में हड़ताल चल रही थी। मालिक लोग झुकने को तैयार नहीं थे, मज़दूरों के लिए स्थिति बड़ी कठिन हो गयी थी और इसलिए उन्होंने अपने बच्चों को, जो भूख के कारण बीमार होने लगे थे, जिनोवा में अपने साथियों के पास भेज दिया था।

रेलवे स्टेशन के स्तम्भों के पीछे से बालकों का एक सुव्यवस्थित जुलूस बढ़ा आ रहा था। वे अधनंगे थे और अपने चिथड़ों में झबरीले, अजीब जानवरों की तरह झबरीले-से लग रहे थे। वे पाँच-पाँच की कतारें बनाये और एक-दूसरे के हाथ थामे हुए चले आ रहे थे—बहुत ही छोटे-छोटे धूल-मिट्टी से लथपथ और शायद थके-हारे। उनके चेहरे गम्भीर थे, किन्तु आँखों में सजीवता और निर्मलता की चमक थी और जब बैण्ड ने गैरीबाल्डी स्तुतिगान की धुन बजायी दुबले-पतले, तीखे और क्षुधा-पीड़ित चेहरों पर ख़ुशी की लरह-सी दौड़ गयी, उल्लासपूर्ण मुस्कान खिल उठी।

भीड़ ने भविष्य के इन लोगों का बेहद शोर मचाते हुए स्वागत किया, उनके सम्मुख झण्डे झुका दिये गये। बच्चों की आँखों को चौंधियाते और कानों को बहरे करते हुए बाजे खूब जोरों से बज उठे। ऐसे जोरदार स्वागत से

तनिक स्तम्भित होकर घड़ी भर को वे पीछे हटे किन्तु तत्काल ही सँभल गये, मानो लम्बे हो गये, घुल-मिलकर एक शरीर बन गये और सैकड़ों कण्ठों से, किन्तु मानो एक ही छाती से निकलती आवाज में चिल्ला उठे:

"इटली ज़िन्दाबाद!"

"नव पारमा नगर ज़िन्दाबाद!" बच्चों की ओर दौड़ती हुई भीड़ ने ज़ोरदार नारा लगाया।

"गैरीबाल्डी ज़िन्दाबाद!" भूरे पच्चड़ की भाँति भीड़ में घुसते और उसी में लुप्त होते हुए बच्चे चिल्लाए।

होटलों की खिड़कियों में और घरों की छतों पर सफेद परिन्दों की तरह रूमाल हिल रहे थे, वहाँ से लोगों के सिरों पर फूलों की बारिश हो रही थी और ऊँची-ऊँची आवाज़ें सुनायी दे रही थी।

सभी कुछ समारोही बन गया, सभी कुछ में सजीवता आ गयी, भूरे रंग का संगमरमर तक किरण-बिन्दुओं से खिल उठा।

झण्डा लहरा रहे थे, टोप-टोपियाँ और फूल हवा में उड़ रहे थे। वयस्कों के सिरों के ऊपर बच्चों के छोटे-छोटे सिर दिखायी देने लगे, लोगों का स्वागत करते और फूलों को लोकते हुए बच्चों के छोटे-छोटे, गन्दे-मैले हाथ झलक दिखाने लगे और हवा में ये नारे लगातार ऊँचे-ऊँचे गूँज रहे थे:

"समाजवाद ज़िन्दाबाद!"

"इटली ज़िन्दाबाद!"

लगभग सभी बच्चों को गोद में उठा लिया गया था, वे वयस्कों के कन्धों पर बैठे थे, कठोर से प्रतीत होने वाले मुच्छल लोगों की चौड़ी छातियों से चिपके हुए थे। शोर-शराबे, हँसी-ठहाकों और हो-हल्ले में बैण्ड की आवाज़ मुश्किल से सुनायी दे रही थी।

शेष रह गये बालकों को लेने के लिए नारियाँ भीड़ में इधर-उधर भाग रही थीं और एक-दूसरी से कुछ इस तरह के प्रश्न कर रही थीं:

"अन्नीता, तुम तो बच्चे ले रही हो न?"

"हाँ। आप भी ?"

"लँगड़ी मार्गारीता के लिए भी एक बच्चा ले लेना..."

सभी ओर उल्लासपूर्ण और पर्व के रंग में रंगे हुए चेहरे थे, दयालु और नम आँखे थीं और कहीं-कहीं हड़तालियों के बच्चे रोटी भी खाने लगे थे।

"हमारे वक़्तों में किसी को यह नहीं सूझा!" चोंच जैसी नाक और दाँतों के बीच काला सिगार दबाये हुए एक बूढ़े ने कहा।

"और कितना सीधा-सादा उपाय है..."

"हाँ! सीधा-सादा और समझदारी का।"

बूढ़े ने मुँह से सिगार निकाला, उसके सिरे को गौर से देखा और आह भरकर राख झाड़ी। इसके बाद पारमा के दो बच्चों को, जो शायद भाई थे, अपने निकट देखकर ऐसी भयानक-सी सूरत बना ली मानो उन पर हमला करने को तैयार हो। बच्चे गम्भीर मुद्रा बनाये उसकी तरफ देख रहे थे। इसी समय उसने टोपी आँखों पर खींच ली और हाथ फैला दिये। बच्चे माथे पर बल डालकर कुछ पीछे हटते हुए एक-दूसरे के साथ सट गये। बूढ़ा अचानक उकड़ूँ बैठ गया और उसने मुर्गे से बहुत मिलती-जुलती आवाज़ में ज़ोर से बाँग दी। नंगे पैरों को पत्थरों पर पटकते हुए बच्चे खिलखिलाकर हँस दिये। बूढ़ा उठा, उसने अपना टोप ठीक किया और यह मानते हुए कि अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है, लड़खड़ाते पैरों पर डोलता हुआ वहाँ से चल दिया।

पके बालोंवाली एक कुबड़ी औरत, जो चुड़ैल बाबा-यागा जैसी लगती थी और जिसकी हड़ीली ठोड़ी पर कड़े, भूरे बाल थे, कोलम्बस की मूर्ति के पास खड़ी थी और अपनी बदरंग शाल के पल्लू से, रोने के कारण लाल हुई आँखों को पोंछ रही थी। इस उत्तेजित भीड़ में यह काली-काली और बदसूरत औरत अजीब ढंग से अकेली-सी प्रतीत हो रही थी...

जिनोआ की काले बालोंवाली एक औरत सात साल के एक बच्चे की उँगली थामे हुए थिरकती-सी चली जा रही थी। बालक खड़ाऊँ और कन्धों को छूता हुआ भूरे रंग का

(पेज 14 पर जारी)

RNI No. UPHIN/2010/36551

डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

सीरिया : साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और इस्लामी कट्टरपन्थ, दोनों को नकारना होगा जनता की ताक़तों को!

शिशिर

सीरिया में जारी गृहयुद्ध अब क़रीब दो वर्ष पूरे करने वाला है। सीरिया के शासक बशर अल असद की दमनकारी तानाशाह सत्ता के ख़िलाफ़ जनविद्रोह की शुरुआत वास्तव में अरब विश्व में दो वर्ष पहले शुरू हुए जनउभार के साथ ही हुई थी। इस जनविद्रोह ने मिस्र और ट्यूनीशिया में तानाशाह सत्ताओं को उखाड़ फेंका। हालाँकि किसी इंक़लाबी मज़दूर पार्टी की ग़ैर-मौजूदगी में इन देशों में जो नयी सत्ताएँ आयीं उन्होंने जनता की आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया और वे साम्राज्यवाद के प्रति समझौतापरस्त रुख़ रखती हैं। लेकिन एक बात तय है कि अरब में उठे जनविद्रोह ने साम्राज्यवादियों की नींदें उड़ा दी हैं। अमेरिकी और यूरोपीय साम्राज्यवादी जानते हैं कि जनता की क्रान्तिकारी चेतना का जिन्न एक बार बोतल से निकल गया तो वह कभी भी ख़तरनाक रुख़ अख़्तियार कर सकता है। इसलिए अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने इन जनविद्रोहों को कुचलने की बजाय उनका समर्थन करके उन्हें सहयोजित करने का क़दम उठाया है। मिस्र और ट्यूनीशिया में काफ़ी हद तक यह साम्राज्यवादी साज़िश कामयाब भी हुई है। अल असद की सत्ता के ख़िलाफ़ जो जनविद्रोह शुरू हुआ था, शुरू में अमेरिका ने उसे समर्थन नहीं दिया था और असद से कुछ सुधार लागू करने के लिए कहा था ताकि यह जनविद्रोह किसी बड़े परिवर्तन की तरफ न बढ़े। लेकिन जल्द ही उसने असद की सत्ता को ख़त्म करने की नीति को खुले तौर पर अपना लिया। दो वर्षों से जारी सीरियाई गृहयुद्ध में क़रीब 8,000 लोग मारे जा चुके हैं और इससे कहीं ज़्यादा विस्थापित हो चुके हैं। अमेरिका विद्रोहियों का समर्थन करके सीरिया में एक ऐसा नियन्त्रित सत्ता परिवर्तन चाहता है जो कि उसके हितों के अनुकूल हो।

असद की सत्ता को गिराने की वकालत करने के पीछे अमेरिका के कई और मकसद भी हैं। इस समय अमेरिकी साम्राज्यवाद को मध्य-पूर्व में जिस सबसे बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है, वह है ईरान। अमेरिका और इज़रायल के साम्राज्यवादी हितों के लिए ईरान सबसे बड़ा रोड़ा है। मध्य-पूर्व में जिस ताक़त का लम्बे समय से ईरान के साथ दोस्ताना सम्बन्ध है वह है सीरिया की अल असद की सरकार। सीरिया और ईरान की मित्रता अमेरिका के लिए चिन्ता का विषय है। ईरान ने हालिया वर्षों में अपनी सैन्य ताक़त को बढ़ाया है। उसने इराक़ से अमेरिकी फौजों के हटने के साथ वहाँ अपनी पकड़ बना ली है। ईरान में शिया मुस्लिम कट्टरपन्थियों का शासन है। इराक़ में शिया आबादी बहुसंख्या में है। ईरान इराक़ के शिया मुसलमान कट्टरपन्थियों के साथ अपने सम्बन्धों के ज़रिये इराक़ में अपना प्रभाव बढ़ा रहा है। साथ ही, सीरिया भी शिया बहुल देश है और वहाँ असद की सत्ता ईरान की पुरानी सहयोगी रही है। ये दोनों ताक़तें लेबनान में हिज़बुल्ला की हर तरह से मदद कर रही हैं और सभी जानते हैं कि इज़रायल और अमेरिका के सबसे बड़े दुश्मनों में से हिज़बुल्ला एक है, जिसने कि इज़रायली ज़ियनवादियों को कुछ वर्ष पहले ही लेबनान से खदेड़ा था। ईरान, सीरिया और हिज़बुल्ला का गठजोड़ अमेरिकी मंसूबों के लिए बेहद ख़तरनाक बनता जा रहा है। साथ ही, यह गठजोड़ फिलिस्तीनी संगठन हमास के साथ भी सम्बन्ध स्थापित कर रहा है।

इन्हीं कारणों से अमेरिका सीरिया में असद की सत्ता को गिराना चाहता है, जो ईरान के लिए एक बड़ा झटका हो सकता है। लेकिन उसके लिए समस्या यह है कि सीरिया की सेना काफ़ी संगठित और उन्नत है। और ईरान की सैन्य शक्ति तो पूरे मध्य-पूर्व में इस समय सबसे ज़्यादा है। हिजबुल्ला के पास भी प्रतिबद्ध योद्धाओं की एक सेना है। ऊपर से रूस खुले तौर पर किसी भी अमेरिकी सैन्य हस्तक्षेप का विरोध कर रहा है। चीन भी उसे समर्थन दे रहा है। अमेरिका और रूस के धड़ों के बीच साम्राज्यवादी अन्तरविरोध के कारण असद अमेरिकी हस्तक्षेप से बचा हुआ है और जनविद्रोह का बर्बर दमन कर रहा है। ऐसे में अमेरिका के लिए स्थिति काफ़ी जटिल हो गयी है।

अमेरिका की दक्षिणपन्थी पत्रिका *फ़ॉरेन अफ़ेयर्स* ने हाल में लिखा कि ईरान वैश्विक साम्राज्यवाद और पूँजीवाद को कोई चुनौती नहीं देना चाहता। न ही सीरिया का विश्व साम्राज्यवाद से कोई बैर है। लेकिन मध्य-पूर्व में ये दोनों ही सत्ताएँ अमेरिकी हितों के लिए अच्छी नहीं हैं। सीरिया और ईरान हिजबुल्ला और हमास को हथियार दे रहे हैं और हर प्रकार की अमेरिका विरोधी ताक़तों के हाथ मज़बूत कर रहे हैं। इज़रायल की गुप्तचर एजेंसी के भूतपूर्व निदेशक इफ्रेम हलेवी ने *न्यूयॉर्क टाइम्स* में हाल ही में लिखा कि सीरिया में अमेरिका को सैन्य हस्तक्षेप करके असद की सत्ता को गिरा देना चाहिए क्योंकि इससे मध्य-पूर्व में ईरान अपने एकमात्र बड़े सहयोगी को खो देगा और उसके बाद ईरान पर हमला करना आसान हो जायेगा और पूरा शक्ति सन्तुलन अमेरिका और इज़रायल के पक्ष में आ जायेगा। अमेरिकी हुक्मरान भी समझ रहे हैं कि ईरान के बढ़ते प्रभाव और ख़ास तौर पर इराक़ की राजनीति में उसकी बढ़ती पकड़ पूरे मध्य-पूर्व में अमेरिकी प्रभुत्व के लिए इस समय सबसे बड़ा ख़तरा हैं। लेकिन इराक़ और अफगानिस्तान में दाँत खट्टे होने के बाद अमेरिका किसी सीधे सैन्य हस्तक्षेप में उतरने से डर रहा है और इसकी बजाय सीरिया में विद्रोहियों को मदद करने के रास्ते पर सोच रहा है। लेकिन अगर वह ऐसा करता है तो रूस असद की सत्ता को सैन्य मदद करेगा। ऐसे में, अमेरिका के लिए स्थिति और भी ख़राब हो जायेगी। इसलिए अमेरिका को इस समय इस समस्या के समाधान का कोई रास्ता नहीं समझ में आ रहा है।

लेकिन यह भी सच है कि ईरान और सीरिया में जो ताक़तें सत्ता में हैं, वे स्वयं भी शिया इस्लामिक कट्टरपन्थी ताक़तें हैं। ये स्वयं प्रतिक्रियावादी ताक़तें हैं और अपने-अपने देशों में इन्होंने जनता के जनवादी हक़ों का दमन किया है, मज़दूर शक्तियों का दमन किया है और ये भी उन देशों के पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करती हैं। मध्य-पूर्व में जो टकराव अभी जारी है वह साम्राज्यवादी शक्तियों और धार्मिक कट्टरपन्थियों के बीच है। सीरिया के जनविद्रोह के नेतृत्व को किसी भी क़ीमत पर इन दोनों से अलग रहते हुए अपनी माँगों और लक्ष्यों को इन दोनों से अलग रखना होगा। लीबिया में जारी जनविद्रोह में वहाँ के विद्रोही संगठन ने गद्दाफ़ी को न हरा पाने के कारण साम्राज्यवादियों से मदद लेना स्वीकार कर लिया था और उसकी क़ीमत आज तक लीबिया की जनता चुका रही है, जहाँ इस समय अराजकता, ग़रीबी और भुखमरी का राज क़ायम है। सीरिया की जनता को यह लड़ाई अपने बूते पर लड़नी होगी, बिना किसी साम्राज्यवादी ताक़त या धार्मिक कट्टरपन्थी ताक़तों की ओर झुके हुए।

इस पूरे प्रकरण ने यह भी दिखला दिया है कि अरब जनता की मुक्ति का रास्ता किसी भी किस्म की सर्वइस्लामी एकता से नहीं हो सकता है। ग़ौरतलब है कि सीरिया में अमेरिकी हस्तक्षेप में मदद करने का काम करने वालों में सऊदी अरब और कतर के शाहों की सत्ताएँ भी हैं, जो कि सुन्नी कट्टरपन्थी हैं। हमेशा की तरह इन दोनों देशों के सुन्नी कट्टरपन्थियों ने शिया देशों में अमेरिकी साम्राज्यवाद का हर सम्भव तरीक़े से समर्थन किया है। अभी कुछ महीनों पहले ही बहरैन में जनविद्रोह को कुचलने के लिए सऊदी अरब के शाह की सेनाओं ने ज़बर्दस्त दमन किया था। इस प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप के चलते बहरैन में जनविद्रोह को कुचल दिया गया और बहरैन के शासकों की सत्ता क़ायम रही। उसी प्रकार तुर्की में अर्दोगान की सत्ता भी खुले तौर पर अमेरिका की मदद कर रही है। वह सीरिया की सेना में अन्दर से बग़ावत करवाने की तैयारी कर रही है। मिस्र में मुस्लिम ब्रदरहुड और सलाफियों की सरकार के प्रमुख मुसावी ने भी अपने देश की जनता को धोखा देते हुए फिलिस्तीन की जनता के साथ ग़द्दारी की और फिलिस्तीन के मसले पर अमेरिकी-इज़रायली साम्राज्यवाद की मदद की है। इन देशों की जनता को भी यह बात अब समझ में आ रही है कि मुस्लिम कट्टरपन्थ की ज़मीन पर खड़ा होकर कभी भी साम्राज्यवाद का मुकाबला नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, इन देशों में जनवादी सत्ताओं के ख़िलाफ़ 1950 से लेकर 1970 के दशक तक मुस्लिम कट्टरपन्थ और आतंकवाद को खड़ा करने का काम स्वयं अमेरिकी साम्राज्यवाद ने ही किया था। उससे पहले इन देशों में इस प्रकार का मुस्लिम कट्टरपन्थ यदि था भी तो बेहद कमज़ोर था। इन देशों में ऐसी ताक़तों को अमेरिका ने पैसे और हथियार देकर खड़ा किया था, ताकि वहाँ वह सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के प्रभाव को फैलने से रोक सके और इन देशों में अस्तित्व में आई स्वतन्त्र रैडिकल पूँजीवादी सत्ताओं का पतन करा सके, जो कि उसके साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति में बाधा पैदा कर रही थीं। अफगानिस्तान में इसी सोच को लेकर तालिबान को खड़ा किया गया था। और इसी सोच को लेकर मध्य-पूर्व में अलक़ायदा को खड़ा करने का काम भी अमेरिका का ही था। जाहिर है, ऐसी ताक़तें हमेशा अमेरिका के नियन्त्रण में नहीं रहतीं और बाद में इन ताक़तों के नेतृत्व में बैठे लोगों की अपनी महत्वाकांक्षाएँ पैदा हो गयीं। नतीजतन, ये ही संगठन अमेरिका के लिए भस्मासुर बन गये। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इन ताक़तों का चरित्र जनपक्षधर है। अरब विश्व में अभी इन ताक़तों को कुछ हिस्सों में जनता का आंशिक समर्थन इसलिए मिल रहा है कि यह जनता साम्राज्यवाद से बेइन्तहाँ नफ़रत करती है, और कुछ जगहों पर जनता को यही ताक़तें अमेरिकी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ती हुई दिखाई पड़ रही हैं। लेकिन ये ताक़तें निहायत ही मौक़ापरस्त होती हैं, और अपने फ़ायदे के लिए ये साम्राज्यवादी ताक़तों के सामने घुटने भी टेक देती हैं, जैसा कि मिस्र के मुस्लिम ब्रदरहुड के साथ हुआ है। दुनिया में जनता ने कहीं भी साम्राज्यवाद का सफलता से मुकाबला धार्मिक कट्टरपन्थ की ज़मीन पर खड़े होकर नहीं किया है और न ही कभी कर सकती है। इसका कारण यह है कि ये दोनों दानवी शक्तियाँ एक ही सिक्के की दो पहलू हैं। एक-दूसरे के अस्तित्व के लिए ज़रूरी हैं और एक दूसरे की पूरक हैं। इसलिए हमारे देश में भी मुसलमान आबादी को यह समझना चाहिए कि सर्वइस्लामी एकता जैसी कोई चीज़ आज दुनिया में सम्भव नहीं है और साम्राज्यवाद-पूँजीवाद का मुकाबला जनता केवल क्रान्तिकारी कम्युनिज़्म की ज़मीन पर खड़ा होकर किया जा सकता है। इसके अलावा कोई तीसरा रास्ता नहीं है। अरब विश्व के पिछले पाँच दशकों के इतिहास ने बार-बार यही साबित किया है। जनता की मुक्ति का रास्ता किसी भी किस्म के धार्मिक कट्टरपन्थ से नहीं जाता। यह सिर्फ़ और सिर्फ़ वर्ग चेतना के रास्ते से जाता है, और इसका मकसद केवल एक ही हो सकता है – एक इंक़लाबी मज़दूर सत्ता!

चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी

विषय: जाति प्रश्न और मार्क्सवाद

12-16 मार्च, 2013, आयोजन स्थल: सोहन सिंह भकना भवन, सेक्टर 29-डी, (ट्रिब्यून कॉलोनी के सामने), चण्डीगढ़

आलेख एवं बहस के केन्द्रीय बिन्दु:

– डा. अम्बेडकर की दार्शनिक अवस्थिति, इतिहासदृष्टि, उनके राजनीतिक एवं आर्थिक विचार, सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना विषयक विचार और जाति-उन्मूलन की परियोजना – मार्क्सवादी समालोचना और उसका प्रतिपक्ष। मार्क्सवाद-विषयक अम्बेडकर के विचारों की समीक्षा।

– जाति प्रश्न की मार्क्सवादी समझ। जाति प्रश्न पर नवअम्बेडकरवादी, नवमार्क्सवादी अवस्थितियों, विभिन्न समाजशास्त्रीय स्कूलों तथा 'सबऑल्टर्न' एवं अस्मितावादी राजनीति सहित विभिन्न उत्तर-आधुनिक अवस्थितियों पर विचार-विमर्श।

– जाति प्रश्न पर मार्क्सवादी इतिहास लेखन और अम्बेडकरवादी इतिहास लेखन।

– जाति प्रश्न और भारत का कम्युनिस्ट आन्दोलन। इतिहास और वर्तमान। सिद्धान्त और व्यवहार। जाति उन्मूलन की कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी परियोजना।

– दलित साहित्य और आलोचना की सैद्धान्तिकी। दलित सौन्दर्यशास्त्र की दार्शनिक अन्तर्वस्तु।

पाँच दिनों की इस गम्भीर बहस में आप साग्रह आमन्त्रित हैं। आलेख भेजने और आने की सूचना देने के लिए आप नीचे दिये पते/फोन/ईमेल पर सम्पर्क कर सकते हैं:

अरविन्द स्मृति न्यास

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ-226006,
ईमेल: info@arvindtrust.org / arvindtrust@gmail.com
फ़ोन: 9936650658, ईमेल: katyayani.lko@gmail.com,
फ़ोन: 8853093555, ईमेल: satyamvarma@gmail.com
विस्तृत विवरण के लिए देखें : http://arvindtrust.org

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006